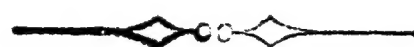
SHAKUNTALA

OR

THE LOST RING

A. SANSKRIT DRAMA OF KALIDAS



TRANSLATED INTO HINDI
PROSE AND VERSE
WITH NOTES

BY

PANDIT JWALAPRASAD MISHRA

OF

MORADABAD



PUBLISHED BY

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS.

Printed at the Shri V. S. Press,

BOMBAY.

1927

॥ श्रीः ॥

महाकवि श्रीकालिदासकृत–

शाकुन्तल नाटक।



अनेक ग्रन्थोंके निर्माता तथा टीकाकार मुरादाबादस्थ
पण्डित **ज्वालाप्रसाद** मिश्रद्वारा

गद्य पद्यमें अनुवादित.

'खेमराज श्रीकृष्णदास' द्वारा

बंबई

निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेसमें
मुद्रित तथा प्रकाशित।

संवत् १९८३, शाक १८४८.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया ।

भूमिका



जो अपने गुणोंके कारण समस्त संसारमें एकमात्र महाकवि कहाता है उस कविकी सबसे ऊंची फहरानेवाली **"शाकुन्तल-नाटक"** रूप ध्वजाको कौन नहीं जानता है ? जिस नाटकके अनुवाद देश देशान्तरकी अनेक भाषाओंमें याथातथ्य न होकर भी इस ग्रन्थकी सर्वोत्तमताका परिचय दे रहे हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि **"शाकुन्तल-नाटक"** के समान सर्वजनप्रिय दूसरा नाटक इस भूमण्डलमें नहीं है, इसमें जो स्थान जो भाव रस-निरूपण नाटकके अलंकारादि और पात्र लिखे गये हैं, वे ऐसे हैं कि मन लगाकर पाठ करते ही नेत्रोंके सामने नृत्य करतेसे दिखायी देने लगते हैं, इसके विषयमें विशेष लिखना पिष्टपेषणमात्र है, कारण कि, सभी ज्ञाताओंने इसके विषयमें थोड़ा बहुत कथन किया ही है और अब भी इसके विषयमें छोटे बड़े प्रबन्ध निकलते ही रहते हैं, इस कारण इसके समालोचक-विभागको छोड़कर इसमें इतना ही कहना बहुत समझते हैं कि, महाकविने इसमें वह भाव रखे हैं, जो प्रेमीजनोंके हृदयमें घनिष्ठ प्रेमकी स्थिति होनेपर हुआ करते हैं और उसके भावोंको हृदयसे मिलाकर पाठ करनेसे रसज्ञ सज्जनोंको इसका परिचय भलीभाँतिसे होसकता है ।

इसका यथार्थ रस तो संस्कृतग्रंथके अवलोकनसे ही हो सकता है परन्तु जो संस्कृतसे अनभिज्ञ हैं उनको अपनी देशभाषाके अनुवादके सिवाय इसके जाननेका और उपाय ही क्या है ? इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, अपने देशकी हिन्दी-भाषाको छोड़कर अन्यदेशकी भाषाओंमें संस्कृतका अनुवाद वैसा उत्तम नहीं होता, कारण कि यह भाषा संस्कृतसे ही बिगड़कर बनी है. इस कारण इसमें उन शब्दोंकी सामग्री विद्यमान है, दूसरी भाषाओंमें नहीं है, इसीसे हिन्दी अनुवाद ही और अनुवादोंसे उत्तम हो सकता है. जिस भारतवर्षमें अच्छेसे अच्छे विज्ञ प्रगट होते रहते हैं और हैं तथा होंगे; वहां **"शाकुन्तल"** हिन्दी

अनुवाद हुए विना कैसे रह सकता है, कई महानुभावोंके लिये अनुवाद हिन्दीके भंडारकी शोभा बढ़ा रहे हैं और प्रशंसनीय हैं, फिर दूसरे अनुवादकी आवश्यकता क्या है ? परन्तु ऐसा कौन है कि इस महाकवि कालिदासके प्रेमसरोवरमें स्नान करके शुष्कशरीरसे बाहर निकल आवे और उसके वस्त्र तथा सर्वांगसे—नेह नीर न चुचावै, "सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे विन रहा न कोई," इसको पढकर कई बार मनमें आया कि एक इसका हिन्दी अनुवाद ऐसा भी किया जाय कि, जो नाटकके खेलके भी उपयोगी हो और संस्कृत भाषावालोंके भी उपयोगी हो, जिसे देखकर असली ग्रंथका मिलान भी हो जाय, परन्तु फिर भी मनमें संकोच होता था, यद्यपि इस विषयमें कितने एक मित्रोंकी प्रेरणा भी हुई पर तो भी इस कार्यका दृढसंकल्प न हुआ। उसी अवसरमें हमारे परममान्य जगद्विख्यात हिन्दीभाषाके परमसहायक **"श्रीवेङ्कटेश्वर"** (स्टीम्) यंत्रालयाध्यक्ष **सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महोदयने बहुत अनुरोध किया कि, अपने यंत्रालयके निमित्त **"शाकुन्तल नाटक"** का गद्यपद्य हिन्दी अनुवाद करना चाहिये. इस अनुरोधको सर्वथा अनिवार्य जानकर मैंने इस ग्रंथको भाषामें अनुवादरूपसे लिखना प्रारंभ किया और जो स्थल पद्यके हैं उनको पद्यमें और जो मूलमें गद्य हैं वहां भाषा गद्य ही रखी है और जहां कहीं ऐसा * फूल बना हुआ हो तो उस वाक्यको मूलका अनुवाद न जानना, वह अधिक जानना, पर ऐसा कहीं ही हुआ है।

पद्यका अनुवाद पद्यमें करना और उसका सम्पूर्ण भाव उसमें प्राप्त करना कोई सहज बात नहीं है, इसीसे थोडे अक्षरोंमें वह भाव भरना कठिनाईका कारण हो जाता है. यद्यपि इसमें सर्वथा कृतकार्य होना कठिन है तथापि यथासंभव किसी श्लोकका भाव नहीं जाने दिया है और निज रचनाके शब्दोंको बहुत न्यून अवकाश दिया है। शेष गद्य रचना सर्वत्र ही मूलका अक्षरार्थ है। इसके पाठसे भाषा और संस्कृत दोनों प्रकारके ज्ञाताओंको लाभ हो सकता है और यदि इसका दृश्य दिखलाया जाय तो यह उसके भी उपयोगी हो सकता है, इसी कारण इसमें भिन्न २ भाँतिके

राग गानेयोग्य सयुक्त किये हैं और मनुष्योंकी रुचिके अनुसार व्रजभाषा पूर्वी और इस देशकी भाषामें भी पद्यरचना की है और वह प्रायः ऐसी शैलीपर लिखे हैं जिनका इस समय प्रचार है।

इसके अनुवादमें कलकत्ता, बंबई आदि स्थानोंकी मुद्रित तथा एक दो हस्तलिखित पुस्तकोंको भी मिलाया, परन्तु सबमें बम्बईकी छपी पुस्तकका ही पाठ अधिक शुद्ध और उपयोगी विदित हुआ, इससे उसीके अनुसार यह भाषामें लिखा गया है।

इसकी भाषासे हिन्दी-रसिक बहुत प्रसन्न होंगे, यह कहना तो अत्यन्त ही अनुचित है, पर हां, सज्जनोंको यह अरुचिकारक भी न होगी, कारण कि, वे दूसरेके गुणोंके ही ग्रहण करनेवाले होते हैं, शेषमें तो "जे परभणित सुनत हरषाहीं, ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं" इसमें इतना ही कहना बहुत है कि, भला है या बुरा है जैसा है, प्यारे! तुम्हारा है।

हिन्दीके प्रेमी उत्साहवर्द्धक "**भारतमित्र**" के एडीटर बाबू बालमुकुन्द गुप्त कलकत्ता, बाबू उदितनारायणलाल वकील गाजीपुर तथा अन्य महाशय और हमारे नगरके कुमर बनारसीदासजी एम. ए., पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र, कन्हैयालाल मिश्र, कन्हैयालाल तंत्रवैद्य, सेठ कुन्दनलाल, पंडित बाबूराम, बाबू बुद्धासिंहजी आदि भी धन्यवादके योग्य हैं, जो हिन्दी अनुवादके ग्रन्थोंके प्रचारार्थ अनेक प्रकारसे यत्न करते रहते हैं।

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि, यदि इस ग्रंथमें कहीं अशुद्धि पावें तो अपनी उदारतासे क्षमा करें, कारण कि मनुष्यके स्वभावमें विशेषकर भूल है।

दोहा--"रसिकनके हित ग्रंथ यह, मैं कीन्हो अनुवाद।
पढ़िये सुनिये प्रेमसे, पइये नित अहलाद॥"

सज्जनोंका अनुगृहीत—**ज्वालाप्रसाद मिश्र,**
(दीनदारपुरा)—मुरादाबाद.

शकुन्तलाकी संक्षेप कथा।

१ अंक–हस्तिनापुरका राजा दुष्यन्त आखेट करता हुआ कण्वऋषिके तपोवनमें पहुँचा. यह आश्रम मालिनीनदीके तटपर था, वहां मेनकागर्भसम्भूत **शकुन्तला** को देखकर मोहित हो गया और सखियोंके मुखसे उसे विश्वामित्रके वीर्यसे उत्पन्न हुई क्षत्रिया जान बड़ा प्रसन्न हुआ और वहीं परस्पर दोनोंके मनमें प्रीति उत्पन्न हुई. पीछे सेनाके लोगोंको देख वनके हाथीके बिगड़नेसे **शकुन्तला** अपनी सखियों सहित कुटीमें चली गयी. राजाने भी आश्रमके निकट ही डेरा किया।

२ अंक–अपने डेरेपर राजाने अपने मित्र **माढव्यसे** **शकुन्तला**का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा और फिर आश्रममें जानेका मिस पूछा कि इसी समय कुछ तपस्वियोंने आकर कहा महाराज! आप यहां कुछ दिन रहकर आश्रमकी रक्षा कीजिये, कारण कि, जब हम यज्ञ करते हैं तो राक्षस आकर विघ्न डालते हैं। राजाने इस बातको सहर्ष स्वीकार किया, कारण कि उसको **शकुन्तला**के समीप जानेका मिस मिल गया।

३ अंक--**शकुन्तला**के निमित्त व्याकुल हो **राजा** उसे वृक्षोंमें खोजने लगा, तब उसको एक चट्टानपर लेटी हुई विरहतापसे तापित **शकुन्तला** दिखायी दी, दोनों सखियें उससे दुःख पूछ रही थीं, **राजा** पेडकी आडसे सब सुनने लगा, सखियोंने **शकुन्तला**से एक प्रेमपत्र लिखवाया, जब वह पत्र **शकुन्तला** बांचने लगी तभी राजाने प्रगट हो अपना वृत्तान्त कहा और वहीं दोनोंका गांधर्वविवाह हुआ, सखी बहाना कर वहांसे चली गयीं, पीछे गौतमी **शकुन्तला**को देखने आयी। राजा पेड़ोंकी आडमें छिप गये और **शकुन्तला** गौतमीके साथ अपनी कुटीको गयी, चलते समय राजा अपनी **अँगूठी** देकर हस्तिनापुरको सिधारे और कह दिया कि, आजसे तीसरे दिन कोई तुमको लिवाने आवेगा।

४ अंकका--(विष्कम्भक) राजाके वियोगमें **शकुन्तला** बडी व्याकुल थी, उसी समय महर्षि **दुर्वासा** आ गये और **शकुन्तला**से आदर न पाकर बोले कि जिसके ध्यानमें तू ऐसी मग्न है, वह तुझे भूल जायगा, पीछे **शकुन्तला**की सखीके मनानेसे कहा कि अपनी **अँगूठी** देखकर उसे स्मरण हो जायगा।

४ अंक—सोमतीर्थसे लौटकर कण्वऋषिने **शकुन्तला**को गर्भवती देखकर सब वृत्तान्त जान अच्छी शिक्षा देकर गौतमी और दो मिश्रोंके सहित उसको राजाके यहां भेज दिया, चलते समय सखियोंने कह दिया कि, यदि राजा तुझे तुरन्त न पहँचान ले तो उसे यह अँगूठी दिखा देना।

५ अंक—जिस समय **शकुन्तला** राजाके पास पहुँची और तपस्त्रियोंने उसे राजाकी विवाहिता बताया तब राजा शापवश उसको न पहँचान सका, उस समय राजाको सुधि दिलानेको शकुन्तला **अँगूठी** दिखाने लगी (जो आचमन करते समय शक्रतालमें गिर पड़ी थी) पर हाथमें न देख लज्जित हुई और जब **राजा**ने उसे स्वीकार न किया तब पुरोहितने कहा जबतक इसके बालक हो तबतक मेरे यहां रहे, यदि उस बालकके लक्षण चक्रवर्तियोंकेसे हों तो आपके रनवासमें रहेगी अन्यथा अपने पिताके घर जायगी. कण्वके चेले अपने आश्रमको गये और **शकुन्तला** पुरोहितके पीछे २ चली, कुछ दूर जानेपर ही एक अप्सरा उसको उड़ाकर ले गयी।

६ अंकका—(प्रवेशक) जहां **शकुन्तला**के हाथसे अंगूठी गिरी थी वहां एक धीमरने मछली पकडी और उसका पेट चीरा तो उसमेंसे वह अंगूठी निकली, उसपर राजाका नाम खुदा था, वह उसे बेचने हस्तिनापुर गया कि कुतवालने राजाकी अंगूठी देख उसे चोर जानकर पकड़ा और मुँदरीको राजाके पास ले गया, उसे देखते ही दुर्वासाका शाप मिटा और राजाको **शकुन्तला**की सुध आ गयी, धीमरको पुरस्कार देकर छोड़ दिया।

६ अंक—**शकुन्तला**की सुध आते ही राजा बड़े पछतावेमें पड़ा और बसन्तोत्सवको वर्जकर मंत्रीपर राजकाज सौंप उपवनमें निवास करने लगा। **सानुमती** अप्सराने यह सब वृत्तान्त देखकर शकुन्तलासे कहा, एक दिन इन्द्रका सारथी **मातलि** रथ लेकर आया और राजासे कहा, दानवोंसे युद्ध करनेको **इन्द्र**ने तुम्हें बुलाया है, राजा उस रथपर चढ़ दानवोंसे युद्ध करने गया।

७ अंक—जब **दानवोंको** जीत इन्द्रसे बिदा हो राजा अपने नगरको चला तब मार्गमें कश्यपऋषिके आश्रममें राजा दर्शनके निमित्त ठहरा. वहीं **शकुन्तला** और अपने पुत्रसे मिला. उन्हें लेकर महर्षि कश्यप और अदितिसे आर्शीवाद पाकर स्त्री पुत्र सहित राजा अपनी राजधानीमें आया. शकुन्तलाका दुःख जानकर मेनकाने एक अप्सराद्वारा कश्यपजीके आश्रममें उसे उड़ा मँगाया, यहीं शकुन्तलाके पुत्र हुआ. तपस्वियोंने उसका नाम **सर्वदमन** रक्खा और पीछे यही सम्राट् होकर **भरत** नामसे विख्यात हुआ।

शकुन्तलाकी रचना विशेषकर **"पद्मपुराण"** के आधारपर है।



नाटकपात्र।

(पुरुष)

सूत्रधार—नाटकका प्रबन्धकर्त्ता।
दुष्यन्त--हस्तिनापुरका पुरुवंशी राजा।
माढव्य--दुष्यन्तका मित्र और विदूषक।
सर्वदमन--शकुन्तलासे उत्पन्न दुष्यन्तका पुत्र।
सोमरात--राजाका पुरोहित।
करभक—दूत।
मित्रावसु—दुष्यन्तका साला नगरका कोतवाल।
वातायन—रनिवासका रक्षक।
जानुक--सिपाही।
सूचक—सिपाही।
कुम्भीलक—शक्रावतार तीर्थका धीमर।
रैवतक—द्वारपाल।
सारथी—रथ चलानेवाला।
कण्व—तपोवनके अधिष्ठाता शकुन्तलाके पालक पिता महर्षि
कश्यप—मरीचिके पुत्र ब्रह्माके पोते।
शार्ङ्गरव- } कण्वके शिष्य।
शारद्वत- }
गालव—कश्यपका शिष्य।
मातलि—इन्द्रका सारथी।

(स्त्री)

नटी—सूत्रधारकी स्त्री।
शकुन्तला—दुष्यन्तकी प्रिया, विश्वामित्रसे मेनकामें उत्पन्न।
प्रियंवदा- } शकुन्तलाकी सखी
अनसूया- }
गौतमी—कण्वकी बहन एक तपस्विनी।
वसुमती—दुष्यन्तकी एक रानी।

सानुमती—मेनकाकी सखी एक अप्सरा ।
तरलिका—रानी वसुमतीकी दासी ।
वेत्रवती— } रनिवासकी द्वारपालिका ।
प्रतीहारी— }
परभृतिका— } उपवनकी रखानेवाली दो युवा स्त्री ।
मधुरिका— }
सुव्रता—सर्वदमनको सिखानेवाली ।
अदिति—कश्यपमुनिकी स्त्री ।
यवनी—राजसेवकिनी आदि ।

संकेत ।

१——नाटकके प्रारम्भमें जो एक ब्राह्मण रंगभूमिमें आकर सभाको आशीर्वाद देता है, उसको **नान्दी** कहते हैं और नान्दीके पीछे **सूत्रधार** आकर जो बातचीत करता है और नाटकका विषय वर्णन करता हुआ कुछ आप गान करता और दूसरे पात्रोंसे गवाता है इस वार्तालापको **प्रस्तावना** कहते हैं, नाटक खेलनेवालोंके मुखियाको **सूत्रधार** कहते हैं ।

२——दूसरे ग्रन्थोंमें जैसे अध्याय आदि होते हैं वैसे नाटकोंमें विभाग करनेवाले अंक होते हैं। यदि किसी अंकके प्रारम्भमें कोई अधिक प्रसंग आता है उसको जब लिखते हैं तो वह **विष्कम्भक, प्रवेशक** वा **गर्भाङ्क** कहाता है ।

३——जहां **नाटक** खेला जाता है उसको **रंगभूमि** कहते हैं और परदेके पीछे जहां नाटकपात्र वेष बदलते हैं अथवा खेलकर चले जाते हैं उसे **नेपथ्य** कहते हैं ।

४——जो लेख ( ) या [ ] चिह्नके भीतर हो वह नाटकपात्रका वचन नहीं जानना. पढनेवालोंके समझानेके निमित्त नाटकपात्रोंका भाव बताया गया है और जहां (आप ही आप) लिखा है वह मनमें ही विचारा, ऐसा जानना, इसके पीछे जहां (प्रगट) लिखा है वह सबको सुननेके निमित्त है ।

५——जहां किसीका आना जाना लिखा है इससे जानना कि वह पात्र रंगभूमिमें आया वा नेपथ्यमें गया ।

श्रीगणेशाय नमः ।

शाकुन्तल नाटक.

(स्थान रङ्गभूमि.)

(नान्दी मंगलपाठ करता हुआ आता है.)



(राग कलिंगड़ा)

कर्त्ता आदिसृष्टि जेहि जायो । सो जल और जो विधिवत आहुति, लेत अग्नि जेहि नाम बतायो । यज्ञ करत जेहि कहत होत्री, कर दोउ जोति समय सधवायो । स्थित सचराचरमें है व्यापक, जेहि गुण शब्द अकाश लखायो । सर्व बीजकी कहत प्रकृति जेहि, जासे प्राणिवन्त जग पायो । आठमूर्तिमें जो प्रत्यक्ष शिव, मिश्र तुम्हैं रक्षहि मनभायो ॥ १ ॥

(नान्दीके पीछे सूत्रधार आया)

सूत्रधार—(नेपथ्यकी ओर देखकर) प्यारी ! जो शृंगार कर चुकी हो तो यहां आओ ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्यपुत्र ! मैं यह आयी ।

सूत्रधार—प्यारी ! यह सभा श्री १०८ श्रीमहाराजाधिराज प्रमरवंशावतंस छत्रपुराधीश्वर श्रीविश्वनाथसिंहदेवजू महोदयकी है। सो आज कालिदासकृत अभिज्ञान-शाकुन्तल-नाटक "कि, जिसको मुरादाबाद निवासी पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रने भाषा गद्य, पद्यमें रचा है" की लीला करनी है सो प्रत्येक पात्रको सावधान होना चाहिये ।

नटी--स्वामिन् ! आपका प्रबन्ध ही ऐसा है कि, कुछ भी न्यूनता न होगी "पर यह तो कहो कि, यह जगत्प्रसिद्ध कविका नाटक भाषामें क्यों खेला जाता है ?" ।

सूत्रधार--"प्यारी ! अब वह समय नहीं है कि, सर्व साधारण संस्कृत समझ सकें और संस्कृत समझना तो क्या ? हमारे भारतवासी अपनी भाषा और सर्वगुणआगरी नागरीका भी आदर नहीं करते, हां, श्रीमान् न्यायपरायण सर एन्टोनी मेकडानल महोदय लेफ्टिनेण्ट गवर्नर **N.W.P.**को धन्यवाद है कि, जिन्होंने हिन्दीको भी न्यायालयोंमें स्थान दिया, इससे कुछ उन्नतिकी सम्भावना है, पर भारतवासी अब भी इस ओर भलीभाँति नहीं झुके हैं, इस कारण उनकी रुचि बढानेको हिन्दीभाषामें नाटक करते हैं" मैं तुमसे अपना सिद्धान्त कहता हूं कि:--

तबहिं भलो नाटक हम जानैं ।
जेहि लखि पण्डितजन सुख मानैं ॥
नाहिंत अति शिक्षित मनमाहीं ।
सुधरनकी दुचितई सदाहीं ॥ २ ॥

नटी--स्वामिन् ! यह सत्य है. अब कार्यके निमित्त आज्ञा दीजिये ।

सूत्रधार--इस सभाके प्रसन्न करनेके सिवाय और क्या आज्ञा है कि, यह उपभोगके योग्य ग्रीष्मऋतु अभी प्रारंभ हुई है, इससे इसी ऋतुके योग्य कुछ गाओ देखो:--

(राग झंझोटी)

कैसे नीके लागत हैं ग्रीषमके भाव री ॥ आस्ताई ।
साँझको समय निहार पावत सुख नरो नार,
उपजत सुख बार बार जीको बड़ो चाव री ।
नदी औ सरोवर जन न्हाये होत शीतल तन,
छाया सुख देत विपिन मोदको बढ़ाव री ।

शीतल सुगन्ध सनी जीको सुख देत घनी,
पाटलके फूल गन्ध लिये चलै बाव री ॥ ३ ॥

नटी--सत्य है. (गाती है.)

(राग वसन्त)

कोमल नव अंकुर युत केशर।
ईषत चुम्बत भ्रमर रहसकर,
अंकम भरत मोद निज हियभर।
देखो नव यौवन वनवासिनि,
शिरसफूल आभूषण करकर।
धरत श्रवण पावत अतिशोभा,
ग्रीषमकी ऋतु है बड़ि सुन्दर ॥ ४ ॥

सूत्रधार--प्यारी! अच्छा गाया, धन्य है! इस रागसे सुननेवालोंकी चित्तवृत्ति एकाग्र होकर रंगभूमि सब ओरसे चित्रलिखितके समान हो गयी, अब किस प्रकारसे इस सभाके महात्माओंको प्रसन्न करें?

नटी--स्मरण नहीं कि, स्वामीने अभी कहा था कि, अभिज्ञान-शाकुन्तल नामक अपूर्व नाटकका खेल करना होगा।

सूत्रधार--आर्ये! अच्छी सुरत दिलायी, मैं तो इस समय भूल ही गया था, कारण कि:--

दोहा--मधुरगीत तव मम हियो, खैंच्यो इमि बलवन्त।
जिमि लायो कर हरण यह, हरिण नृपति दुष्यन्त॥५॥

(दोनों बाहर गये)

इति प्रस्तावना।

शाकुन्तल नाटक !

अंक १.

स्थान वन ।

(रथपर चढ़ा, धनुष बाण हाथमें ले राजा दुष्यन्त हरिणको देखता सारथी सहित आया.)

सारथी--(पहले कुरंगकी ओर फिर राजाकी ओर देखकर) हे आयुष्मन् !

दोहा--लखि कुरंगको अरु तुम्हैं, हाथ लिये धनु बान ।
साक्षात जनु यज्ञमृग, पीछे शिव भगवान ॥ ६ ॥

राजा--हे सूत ! यह मृग तो हमें बहुत दूर ले आया है और फिर यह देखोः--

कैसे रथको हरिण विलोकत,
लखि घहरान अधिक स्यन्दनकी,
चलत उतावल ग्रीवा मोरत ।
कबहूँ बाण लगनके भयसे,
आगे पिछलो गात सकोरत ॥
छिन २ मगमें थाकित मुखसे,
दाभ गिराय चला पुनि दौरत ।
लखो कुलांच भरत अब कैसी,
भूतलमाहिं न निजपग जोरत ॥ ७ ॥

और देखो अब ऐसे वेगसे जाता है कि, सहज दिखायी भी नहीं पड़ता ।

सार०--हे महाराज ! अबतक भूमि ऊँची नीची थी, इससे मैंने रास रोककर रथ धीरे चलाया था, इससे यह मृग दूर निकल गया है, अब धरती एकसी आयी, अभी ले लेंगे ।

राजा--तो अब घोडोंकी रास छोड़ो ।

सारथी--जो महाराजकी आज्ञा (रथको भर दौड चलाय उसके वेगका निरूपण करके) महाराज देखो ! देखोः--

अश्वकी ढीली की जब रास, वेगसे दौर परे तत्काल ।
अगले तनुको तान कनौती, लीन्ह दबाय विशाल ॥

चमर शिखा हालत नाहिं नेकहु, रज न लगत खुरताल ।
झपटत मानहु वेग हरिनको, सह न सकत भूपाल ॥८॥

राजा-सत्य है, यह घोड़े इन्द्र और सूर्यके घोड़ोंके वेगको भी जीतकर चलते हैं ।

(झंझोटीका जिला)

दूर रहेसे वस्तु जौनसी, पहले झीनी परी दिखाई ।
निकट भयो सो मोटी दीसति, कटीहुई सो जुरी लखाई ॥
टेढ़ी निकट भये जो दीखत, दूर भये सीधी दरशाई ।
रथके वेग निकट अरु आगे, दूर न अन्तर नेकु रहाई ॥९॥

सारथि ! देखो अब हम इसे गिराते हैं (धनुषपर बाण चढ़ाया)

(नेपथ्यमें)

हे महाराज ! इसे मत मारो । मत मारो । यह आश्रमका मृग है ।

सारथी-(शब्द सुनकर देखता हुआ) हे महाराज ! बाणके सम्मुख आये हुए हरिणके बीचमें यह तपस्वी खड़े हैं ।

राजा-(चकित होकर) तो घोड़ोंको रोको ।

सारथी-जो आज्ञा (रथ रोकता है)

(एक तपस्वीका दो शिष्यों समेत प्रवेश)

तपस्वी-(बाँहें उठाकर) हे राजन् ! यह आश्रमका मृग है। इसे मत मारो यह मारनेके योग्य नहीं है ।

दोहा-भलीभाँति संधानकृत, लो उतार यह बान ॥
दुखियन रक्षत शस्त्र तव, लेत न बिन अघ प्रान ॥१०॥

राजा-यह मैंने बाण उतार लिया (बाण उतारता है)

तपस्वी-पुरुवंशदीपक ! आपको यही चाहिये ।

दोहा-जन्म पाय पुरुवंशमें, तुम्हैं उचित नृप एह ॥
चक्रवर्ति गुणयुत सुवन, होय तुम्हारे गेह ॥ ११ ॥

दोनों तपस्वी-(भुजा उठाकर) अवश्य तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो ।

दुष्यंत–(प्रणाम करके) ब्राह्मणोंके वचन शिर माथे लिये ।

तपस्वी–हे राजन् ! हम तो समिधा लेने जाते हैं और यह कुलपति कण्वका मालिनी नदीके किनारे आश्रम दीखता है, यदि अवसर हो तो वहां चलकर अतिथिसत्कार ग्रहण कीजिये और

(राग काफी)

मुनियनके आश्रममें जाई ।
देखहुगे सब काज धर्मके होत विघ्न विन राई ।
तब जानहुगे ये मेरी भुज धनुगुण चिन्ह सुहाई ।
कितने सत्पुरुषनकी रक्षा होत जगत सुखदाई ॥ १२ ॥

राजा–महर्षि आश्रममें हैं, कि नहीं ?

तपस्वी–अपनी पुत्री शकुन्तलाको अतिथिसत्कारकी आज्ञा देकर उसीकी ग्रहदशा शान्त करनेके निमित्त सोमतीर्थको गये है ।

राजा–अच्छा ! हम उस कन्याको ही देखेंगे और वह हमारा भक्तिभाव महर्षिसे कहेगी ।

तप०–तबतक हम भी अपने कार्यको जाते हैं (शिष्यों समेत गये)

राजा--हे सारथि ! रथ चलाओ, इस पवित्र आश्रमके दर्शन कर अपना जन्म सफल करें ।

सूत–जो श्रीमान्‌की आज्ञा (रथको चलाया)

राजा–(चारों ओर देखकर) हे सूत ! जो कोई न भी बताता तो भी यहां हम जान लेते कि, तपोवन समीप है ।

सूत–कैसे ?

राजा–क्या तुम नहीं देखते ? कि यहां--

(दादरा)

देखो ये तपोबनके दीखै हैं चिह्नसारे ॥ आस्ताई ॥
तोतोंके कोटरोंसे गिरकर समेके चावर,
नीचे परे तरुनके शोभाके भरे भारे ॥
हिंगोट कूटनेकी चिकनी धरी शिला है,

कैसे हिले हिरन हैं टरते हैं नहीं टारे ॥
भीजे बसनकी बूँदें पगवाटमें नदीलो,
पड़करके बनी रेखा शोभा हैं कैसी धारे ॥
अतिवेगसे पवन यह सरिताका जल हिलोरे,
हुइ श्वेत मूल धुलकर जो वृक्ष हैं किनारे ॥
नइ कोंपलोंके पत्ते लगकर धुवाँ हवनका,
देखो तौ नेक चितधर धुँधरे हुएहैं सारे ॥
उपवनके आगे भूमीकी दाभ जो कटी है,
निश्शंक चर रहे हैं मृगपोत ये दुलारे ॥
दुर्लभ है गृहीजनको ये शोभा तपोवनकी,
पाये जो दरश हमने धनभाग हैं हमारे ॥ १३ ॥

सा०--सब सत्य है, मैंने जान लिया।

राजा--(थोड़ी दूर चलकर) तपोवननिवासियोंके कार्यमें विघ्न न पड़े, इससे रथ यहीं खड़ाकर लो, हम उतर लें।

सूत--मैंने रास थाम ली। महाराज उतर लें।

राजा--(उतरकर) हे सूत ! तपोवनमें विनीत वेषसे जाना चाहिये, इस कारण यह तुम लिये रहो (धनुष और आभूषण सारथिको दिये) हे सूत ! जबतक आश्रमवासियोंके दर्शन करके मैं यहां लौटि आऊं, तबतक तुम घोडोंकी पीठ ठण्ढी कर लो।

सूत--जो आज्ञा (गया)

राजा--(लौटकर और देखकर) यह आश्रमका द्वार है, अब इसमें चलूं। (प्रवेश कर और शकुन देखकर)

(काफी)

यह तौ पुण्यक्षेत्र अतिपावन।
फरकत बाँह कहा फल करिहै, यह थल शोक नशावन।
अरु जो होय नाहिं कछु अचरज, भलीबात मनभावन।
होनहारके द्वार अनेकन, होत चहत जब आवन॥ १४ ॥

(नेपथ्यमें)

सखियो ! इस ओर आओ, इस ओर आओ ।

राजा–(कान लगाकर) अहो ! इस फुलवारीके दक्षिण ओर क्या बोलसा सुनाई देता है ? इधरहीको चलूं (घूमकर और देखकर) अहा ! यह तो तपस्वियोंकी कन्या है, अपने अपने वित्तके अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी लिये वृक्षोंके सींचनेको जाती हैं (निपुणता निरूपण करके) अहो ! इनका कैसा मधुर दर्शन है ?

आश्रमकी यह तिय बारी हैं ।
इनको रूप निहारि मनोहर,
तिय रनिवासन छबिधारी हैं ।
तिमि वनलता आपने गुणसे,
उपवन वेलि जितनहारी हैं ॥
यह सुकुमारी वनकी शोभा,
करत रूप गुण उजियारी हैं ॥ १५ ॥

तबतक इस वृक्षकी छायामें खडा हो इनकी बातें सुनूं [खडा होकर देखने लगा] उसीप्रकारसे दो सखियोंके संग शकुन्तला आयी)

शकुन्तला–सखियो ! इस ओर आओ । इस ओर आओ ।

अनसूया–अरी शकुन्तला ! मैं जानती हूं यह आश्रमके वृक्ष पिता कण्वको तुझसे भी अधिक प्यारे हैं,नहीं तो नयी मल्लिकाके फूलोंके समान कोमलांगी तुझको इनके सींचनेकी आज्ञा क्यों दे जाते ?

शकुं०--हे सखी ! निरी पिताकी ही आज्ञा नहीं, मेरा भी इन वृक्षोंमें सहोदरकासा स्नेह हो गया है (पेडको पानी दिया)

राजा--(आप ही आप) क्या कण्वकी बेटी शकुन्तला यही है ? महात्मा कण्वका चित्त बडा कठोर है जिन्होंने इसको आश्रमधर्ममें लगाया है ।

(जोगिया आसावरी)

क्या यही है ऋषीकी दुलारी ।
जो रही सींच बिरवें कुमारी ॥

इससे ऐसी तपस्या कराना।
जैसे पंकजके दलसे अयाना ॥
छेद नीचा है छौंकरकी डारी ॥ क्या० ॥
उन मुनीने न कुछ भी विचारी।
ऐसी जो रूप गुणकी उजारी ॥
कैसे सौंपू उसे काम भारी ॥ क्या० ॥ १६ ॥

जो भी हो, वृक्षकी ओटमें होकर इनकी बात चीत करने निःशंक देखूंगा (एकांतमें बैठ गया)

शकुं०—हे सखि अनसूया ! प्रियंवदाने मेरी वल्कलकी कंचुकी बड़ी कसकर बाँधी है, जिससे अंग बँधसा गया है इसे ढीली कर दे।

अन०--अच्छा ढीली करती हूँ (ढीली करने लगी)

प्रियंव०--(हँसकर) मुझे दोष क्यों देती है ? अपने यौवनको दोष दे, जो तेरे उरोजोंका विस्तार करता है।

दुष्यं०—(आप ही आप) इसने ठीक कहा, वल्कल वस्त्र इस मोहिनीके गातको शोभा देता ही है।

एहो मुनिसुताके गात।
बँधे कंधर वसन वलकन तन उमंग लखात।
हमें ऐसी विमल शोभा नहिं कहूं दरशात।
ढके युगल उरोज पूरी धरत शोभा नाहिं।
छिपरह्यो है फूल जैसे पीत पातनमाहिं।
कह्यो मैंने भूलकर नहिं सजत वल्कल याहि।
लगत नीके बालको सब रूप सागर आहि।
पंकमें सरसिज सुहावन, शशिहि कारी रेख।
लगत सुन्दर तिमि तिया यह किये तपसी भेख।
सत्य है करतार जेहिको देत रूप अपार।
भलो लागत ताहि सब कुछ लेहि जो तनुधार॥१७॥

राजा–प्रगट होनेका यह अवसर तो अच्छा है। मत डरो! मत डरो! (ऐसा आधा कहकर मनमें) परन्तु इससे तो विदित होजायगा कि, मैं राजा हूँ जो कुछ हो कुछ बातचीत करूंहीगा।

शकु०–(थोड़ी दूरपर खड़ी होकर और कटाक्षसे देखकर) यह तो यहां भी आता है, हाय! अब कहां जाऊँ?

राजा–(झटपट आगे बढकर)

छंद–मैं पुरुवंश बनो जबलो भूमण्डलको रखवारो।
तबलो कौन दुष्ट है जो मुनिसुता सतावनहारो॥
पहुँच्यो आय समीप तिहारे अब मनतैं भय टारो।
यह निर्विघ्न तपोवन यामें सब शंका निरवारो॥ २१॥

(राजाको देखकर तीनों चकित हो गयीं)

अन०–आर्य! यहां सतानेवाला तो कोई नहीं है, यह हमारी प्यारी सखी भौंरेके घेरनेसे डर गयी है, (शकुन्तलाकी ओर दृष्टि करती है)

राजा–(शकुन्तलाके समीप जाकर) हे बाले! तुम्हारा तपोव्रत तो सफल है?

(शकुन्तला लाजसे नीचेको देखती चुप रह गयी)

अन०–तुम सरीखे पाहुनेके पधारनेसे तपोव्रत सफल क्यों न होगा? सखी शकुन्तला! तू जा और कुटीमेंसे फल फूल और अर्घ्य ला, चरण धोनेको जल यहीं हैं (घटकी ओर देखती है)

राजा–तुम्हारे मीठे वचनोंसे ही हमारा अतिथि सत्कार हो गया।

प्रियंव०–तो आओ––इस सप्तपर्णवृक्षकी शीतलछायावाली वेदीमें बैठकर विश्राम लेलो।

राजा–तुम भी तो इस कामसे थक गयी होगी, आओ छिनभर बैठ लो।

अन०–(शकुन्तलासे हौलेसे) शकुन्तला! अतिथिके निकट बैठना उचित है। आओ! यहाँ बैठ लें (सब बैठती हैं)

शकुन्तला–(आपही आप) इस पुरुषको देखकर मेरे मनमें ऐसा विकार उपजता, है जो तपोवनके योग्य नहीं है।

राजा–(सबको देखकर) हे सुन्दरियो! समान अवस्था और समान रूपमें तुम्हारी परस्परकी प्रीति बड़ी अच्छी लगती है।

प्रियंवदा-(हौले अनसूयासे) अनसूया ! यह अतिथि कौन है ? जिसके रूपमें चतुराईके साथ गंभीरता और वचनोंमें चतुरताके साथ मिठास है? यह लक्षण तो बडे प्रतापियोंके हैं।

अनसू०-(हौले प्रियंवदासे) सखी ! मैं भी इसी अचम्भेमें हूं, अब इससे पूछती हूं (प्रगट) हे आर्य्य ! तुम्हारे मीठे बोलोंके विश्वासमें आकर मेरा जी यह पूछनेको करता है कि आप किस राजवंशके भूषण हो ? कौनसे देशको विरहमें व्याकुल छोड आये हो ? किस कारण तुमने अपने सुकुमार शरीरको इस तपोवनमें आकर पीडित किया है ?

शकुन्त०-(आपही आप) हे मन ! व्याकुल मत हो, तेरे मतेकी बात अनसूया कर रही है।

दुष्य०-(आपही आप) क्या मैं अपने आपको बताऊँ ? अथवा कैसे अपनेको छिपाये रहूं ? जो हो इससे यह कहूंगा (प्रकाश) हे ऋषिकुमारि ! पुरुवंशी राजाने मुझे धर्माधिकारमें नियुक्त किया है, सो मैं आश्रम देखने आया हूं कि, तपस्वियोंके कार्य्योंमें कुछ विघ्न तो नहीं होता ?

अनसू०-आपके पधारनेसे अब धर्मचारी सनाथ हुए।

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जासे लज्जित हुई)

दोनों-(दोनोंके आकारको देखकर हौले हौले) हे शकुन्तला ! यदि आज पिताजी घर होते !

शकुन्त०-तो क्या होता ?

दोनों-तो अपने जीवनसर्वस्वको भी देखकर इस अनोखे पाहुनेको कृतार्थ करते।

शकुन्त०-चलो हटो, मनसे गढकर बातें बनाती हो, मैं तुम्हारी न सुनूँगी।

(अलग जा बैठी)

राजा-तो मैं भी अब तुम्हारी सखीका वृत्तान्त पूछता हूं।

दोनों०-महात्मा ! यह आपका अनुग्रह है।

राजा०–कण्व तो सदाके ब्रह्मचारी हैं यह बात विख्यात है, फिर यह तुम्हारी सखी उनकी पुत्री कैसे हुई ?

अनसू०--सुनिये। कुशिकके वंशमें एक बडे प्रतापी राजर्षि हुए हैं।

राजा–हां, मैंने सुना है।

अनसूया–उन्हींसे हमारी प्यारी सखीकी उत्पत्ति जानो और तात कण्वको यह पडी मिली थी उन्होंने ही इसको पाला पोषा है, इससे वह इसके पिता कहाते हैं।

राजा–पडी मिली थी यह सुनकर तो बडा आश्चर्य होता है यह वृत्तान्त तो जड़से सुननेकी इच्छा है।

अन०–सुनिये महाराज! जब उस राजर्षिने गौतमीके किनारे बडा तप किया, तब देवताओंने शंका मानकर उनके तप नियममें विघ्न करनेके निमित्त मेनका नाम अप्सरा भेजी।

राजा–सत्य है, दूसरेकी समाधिसे देवताओंका डरना प्रसिद्ध है।

अन०–तब वसन्तके प्रारम्भमें मेनकाकी उन्माद करनेवाली छबि देखते ही (इतना कह लाजसे शिर झुकाय मौन हो गयी)

राजा–आगेकी बात हमने जान ली, यह अप्सराकी बेटी है?

अन०–हां।

राजा–सत्य है नहीं तो,

दोहा–मनुज तियनमें रूप अस, कैसे संभव होय॥
वसुधासे निकसत नहीं, विद्युछटाकी जोय॥ २२॥

(शकुन्तलाने शिर झुका लिया)

राजा–(आपही आप) तो अब मनोरथ पूरे होनेका समय दिखायी दिया परंतु सखीने जो वर मिलनेकी बात हँसीमें कही थी, इसको सुनकर मेरे मनमें दुबिधासे अधीरता होती है।

प्रिय०–(मुसकाकर पहले शकुन्तला और फिर राजाकी ओर देखकर) क्या आपको कुछ और भी पूछना है ?

(शकुन्तला सखीको अंगुलीसे वजती है)

राजा-तुमने मेरे मनकी ठीक जान ली, मुझे इस अनूठे चरित्रके सुननेकी अभी और लालसा है।

प्रियंवदा-तो विचारकी क्या बात है, तपस्वियोंसे कुछ पूछनेमें रोक-टोक नहीं है।

राजा-मैं तुम्हारी सखीके विषयमें यह पूछना चाहता हूं कि,

(गीतिका छन्द)

रतिराज काज बिगार कारन होत व्रत वन वासुको।
व्याहलो ही पालि है तुम्हरी सखी कह तासुको॥
खेलि है अथवा सदा निज नैन सम हरिनीनमें।
करहिं अवलम्बन महाव्रत रहै मग्न अलीनमें॥ २३॥

प्रियम्व०-हे आर्य ! सखी तो धर्माचरणमें भी परवश है, विवाहकी कौन कहे ? इसके पिताका संकल्प है कि अनुरूप वर मिले तो दें।

राजा-(आपही आप) यह संकल्प पूरा होना तो कुछ कठिन नहीं है।

दोहा-रे मन कर अभिलाष अब, दूर भयो सन्देह॥
जानी अग्नी जाहि सो, रत्न अलंकृत देह॥ २४॥

शकुन्तला-(रिससी होकर) ले अनसूया ! मैं जाती हूं।

अनसू०-क्यों ?

शकुन्तला०-मैं पूज्य प्रियवादिनी गौतमीसे जाकर कहूंगी, कि यह मुझसे अनकहनी बातें कहती है।

अनसू०-सखि ! तुझे यह उचित नहीं है कि, ऐसे अनोखे पाहुनेका विना आदर किये छोडकर चली जाय।

(शकुन्तला विना कुछ कहे चल दी)

राजा-(ऐसे उठा मानो रोकेगा फिर रुककर आपही आप) अहा ! बाहरकी चेष्टाओंसे ही कामियोंके मनकी बात प्रगट हो जाती है।

(परज)

अनुचित काज कियो हो चाहत।

पाछे चलत तियाके काहे,
नहिं निजकुल मर्याद निबाहत ।
यद्यपि न उठ्यो तदपि यों मानत,
कछुकर लौट पर्‍यो मन दाहत ।
रोकलियो कुलकान आन मोहि,
किमि जिय मोह सिंधु अवगाहत ॥ २५ ॥

प्रियवं०–(शकुन्तलाको रोककर) सखि ! तुझे जाना न होगा ।

शकु०–(भौं चढाकर) क्यों ?

प्रियवंदा–अभी तुझे दो बिरुए और सींचने हैं, सो आ इस ऋणको चुकाकर फिर चली जाना (बलसे रोकती है)

राजा–सुन्दरि ! वृक्ष सींचते २ तुम्हारी सखी थकीसी दीखती है कारण कि–

(राग देश सोरठ)

घट करमें लिये सुकुमार बाल, तरु सिंचत हथेली भई लाल, दोऊ उठत उरोज उसास चाल ॥आस्ताई॥ भयो आज सखीको श्रम अटूटि, रहिं स्वेद कपोलनि बूंद छूटि, रहे चिपक करन भूषण विशाल ॥ १ ॥ सब अलक गईं विथराय आज, कर धारिरही तेहि सहित लाज, जनु प्रेमफन्द डारनाकिमाल ॥ २६ ॥

सो मैं यह ऋण यों चुकाता हूं (अँगूठी देनेकी इच्छा करता है) (दुष्यन्तका नाम अँगूठीपर बांचकर दोनों एक दूसरेकी ओर निहारती हैं)

राजा–इसके लेनेसे तुम यह संकोच मत करो कि, यह राजाकी वस्तु है, कारण कि मैं भी तो राजपुरुष हूँ, मुझे यह राजाके यहाँसे मिली है ।

प्रियवं०–तो यह आपकी अँगुलीसे विरक्त होनेके योग्य नहीं है, आपके वचनसे ही ऋण चुकगया (कुछ हँसकर) सखी शकुन्तला ! इन महानुभावने वा महाराजने दया करके तुझे ऋणसे चुका दिया, अब चाहे तो तू चली जा ।

शकुन्तला–(आपही आप) जो अपनेको वशमें रख सकी तो (प्रगट) जानेकी आज्ञा देनेवाली अथवा रोकनेवाली तुम कौन हो ?

(दादरा)

पियके वचन भूलि नाहिं जैहौं ।
हियरेके अन्तर नित राखौं, जो अपने वशमें हौ रैहौं ॥
प्रथम मिलाप न देख सकत हे, मेरो श्रम केहिभाँति भुलैहौं ।
दयानेह उपकार सुबोलनि, मुएहू मनतैं नाहिं मिटैहौं ॥
मर्महित धरत कमलकर गगरी, याके पलटे मैं कह दैहौं ?
मिश्र प्राण सर्वस्व हमारे, तन मन वार नेह इन लैहौं ॥२७॥

राजा–(शकुन्तलाको देखकर आप ही आप) जैसा मेरा मन इससे लगा है वैसा ही इसका भी मुझसे उलझा दिखाई देता है, अथवा मेरे मनोरथ पूरे होनेके लक्षण तो दीखते हैं ।

(दादरा)

मनकी लगन ये छिपाए छिपै ना,
यदपि न बातन बात मिलावत,
तदपि सुनत हितकर मम बैना ।
सन्मुख आय होत नहिं ठाढ़ी,
कियेहि रहत इतको दोउ नैना ।
यह सकुचानि यह नेह दुहुन दिशि,
लखि लखि जिय अब धीर धरै ना ॥ २८ ॥

(नेपथ्यमें)

हे हे तपस्वियो ! आओ, मिलकर तपोवनके जीवोंकी रक्षा करो, मृगया खेलता हुआ राजा दुष्यन्त समीप आ पहुंचा है, देखो:–

यह देखो कैसी धूर उड़ी सब वनमें छाई है ॥आस्ताई॥
घोड़ोंके पगोंसे उड़कर, पड़ती वसनोंपै आकर ।
जो सूख रहे हैं वृक्षोंपर, धूसरता पाई है ॥
सन्ध्याकी अरुणता माहीं, टीड़ीदल ज्यों दरशाहीं ।

तैसे घेरो आकाश विपत्ति वनपर आई है ॥
देखो यह वनका करिवर, राजाके रथसे डरकर।
हरनोंको व्याकुल करता तरु तोरै दुखदाई है ॥
पैरोंमें लताका लंगर, डाले घूमें है बेडर।
लगते हैं दाँत कंधेसे पीछे दृष्टि लगाई है ॥
अब चलो यहांसे धाई, कुटियोंमें रहो छिपाई ।
यह जप तपमें विघ्नरूप अब कौन उपाई है ॥ २९ ॥ ३० ॥

(ऋषिकुमारियोंने कान लगाकर सुना और चौंक पडीं)

राजा--(आपही आप) हा धिक् इन पुरवासियोंने मुझे ढूंढते २ यहां आकर तपोवनमें विघ्न डाला, अच्छा अब इनके पास जाना पडा।

दोनों--हे महात्मा ! हम इस वनके वृत्तान्तसे व्याकुल होती हैं हमें अब कुटीमें जानेकी आज्ञा दीजिये।

राजा--(संभ्रमसे) अच्छा ! जाओ मैं वह उपाय करूंगा जिससे तपोवनमें कोई विघ्न न होने पावेगा।

(सब उठती हैं)

दोनों--हे श्रेष्ठ ! जैसा अतिथिसत्कार होना चाहिये वैसा हमसे नहीं बना इससे फिर दर्शन देनेको कहते हुए लजाती हैं।

राजा--ऐसा मत कहो, तुम्हारे दर्शनसे ही हमारा सत्कार हो गया।

(शकुन्तला राजाको देखती हुई और बहानेसे ठिठकती हुई सखियोंके संग गयी)

राजा--(आपही आप) अब नगरकी ओर जानेको तो इच्छा नहीं करती तो अब संगवालोंसे मिलकर तपोवनके समीप ही डेरा करूंगा, शकुन्तलाके हावभावोंसे मैं अपने मनको उससे नहीं हटा सकता।

दोहा--**व्याकुल मन पीछे चलै, आगे चलै शरीर ॥**
फहरावत पीछे ध्वजा, सन्मुख चलत समीर ॥ ३१ ॥

(सब गये)

पहला अंक समाप्त हुआ।

अंक-२.

स्थान-वनके निकट राजाके डेरे।

(दुःखी हुआ विदूषक आया)

माढव्य-(श्वास लेकर) देख लिया, इस मृगयाविहारी राजाकी मित्रतासे हम बड़े दुःखी हैं। यह मृग है, यह वराह है, यह शार्दूल है, दुपहरीमें भी यही कहते इस बनसे उस बनमें उससे इसमें दौड़ना पड़ता है, गर्मीमें कहीं इतनी भी छाया नहीं मिलती जहां कुछ विश्राम लिया जाय, वृक्षोंके पत्ते गिरनेसे कसैला हुआ पहाड़ी नदीका जल पीनेको मिलता है, शूलपर भुना आमिष कुसमय खानेको मिलता है, घोड़ोंके संग दौडते २ शरीर ऐसा ढीला पडजाता है कि, रातको अच्छी तरह नींद नहीं आती और फिर बड़े सबेरे ही दासीपुत्र चलो वनको२इसप्रकार चिल्ला चिल्लाकर जगादेते हैं परन्तु इतनेपर भी पीडा नही गयी, इतने दुःखपर एक नया घाव और लगा, कि कलदिन हमसे बिछुडकर राजा मृगके पीछे धावमान होता हुआ तपस्वियोंके आश्रममें जा पहुँचा, वहां मेरे अभाग्यसे उसकी दृष्टि तपस्वीकी कन्या शकुन्तलापर पडी। अब वह नगर जानेको मन भी नहीं करता, अब भी इन्हीं बातोंके शोच विचारमें सब रात उनकी आंख नहीं लगी, जबतक राजाको नित्यकर्म करता हुआ न देख लूंगा न जानें तबतक मेरी क्या गति होगी ? (घूमकर और देखकर) अहा ! यह बनके फूलोंकी माला पहरेहुए धनुषधारिणी यवनियोंके साथ मेरा प्रियसखा इधरहीको आता है, तो अब मैं भी अंगभंग करके विकलके समान खडा हो जाऊं (लकडी टेककर खडा हुआ) चलो यों ही विश्राम सही।

(ऊपर कहे हुए वेषसे दुष्यन्तका प्रवेश)

(दादरा)

दीखत मोहिं तिय मिलन कठिन है।
पर जब भाव विलोकत ताके,
मिलि है अवशि कहत यह मन है,
यदपि कामको भयो न कारज,
तदपि दोऊ दिशि चाह मिलन है।
प्रीतिरीतिको रंग निरालो,
पार लहै जग को अस जन है॥ ३२॥

(हँसकर) जब किसीकी किसीसे लगती है तब वह अपने मनकी अभिलाषासे उसके मनका प्रेम अनुमान कर वंचित होता है।

(ईमन कल्याण)

मनकी गति अति अगम अपार।
वह चाहै कहुँ अनत दृष्टिकर अनतैं रही निहार।
है यह नेहदृष्टि मोहिं ऊपर मैं जानी निरधार।
चली मन्दगति होय पियारी चहुँ नितम्बके भार।
मैं जानो यह मोहिं दिखावत निज विलास विस्तार।
रोक्यो सखी भई हो सांची रिस चाहैं सुकुमार।
मैं जानो एहू कटाक्ष कछु मोहूपर बलिहार।
सत्य कहत कवि कामीजनकी दृष्टि अनीकी धार।
होत आपने ही स्वारथमें जानत सब संसार॥ ३३॥

माढव्य--(वैसे ही खडा रहा) हे मित्र! हाथ पांव नहीं चलते इससे वाणीमात्रसे ही आशीर्वाद देता हूँ कि आपकी जय रहे।

राजा--यह तुम्हारा अंगभंग क्यों हुआ?

विदूषक--अपनी अँगुलीसे आंख चुभाकर, पूछते ही आंसू क्यों आये?

राजा--हम तुम्हारी बात नहीं समझे।

विदूषक--भो मित्र ! देखो यह बेत जो कुबड़ोंकी होड़ करता है, यह अपने आप टेढा हुआ है, या नदीके वेगसे ?

राजा-नदीके बेगसे ही झुका होगा ।

माढव्य-इसी प्रकार मेरे अंगभंगके भी आप ही कारण हैं।

राजा-कैसे ?

माढव्य-भला यह बात तुमको उचित है कि, राजकाज छोड़कर वनमें अहेरियोंके कार्य करो ? यह मैं सत्य कहता हूँ कि प्रतिदिन बनके जीवोंके पीछे दौड़ते दौड़ते मेरा अंग अंग टूट गया है, इससे प्रार्थना करता हूँ कि, अब कृपा करके मुझे एक दिन तो विश्राम लेनेको छोड़ जाओ ।

राजा-(आप ही आप) इधर तो यह कहता है और मेरा मन भी ऋषिकुमारीकी सुधमें मृगयासे निरुत्साह हो गया है, कारण कि-

(कल्याण)

मृगनपर कैसे चलि है बान ।
सिखराई जिन तियको भोरी, चितवन अति सुखदान ।
तिनपै धनु उठ सकत न करतैं, दया उठत मन आन ।
अब यह काज बनै नाहिं मोते, अकुलावत हैं प्रान ।

माढव्य-(राजाके मुखको देखकर)श्रीमान् न जाने मनमें क्या शोच रहे हैं ? मेरी बात तो बनमें रोनेके समान हो गयी ।

राजा-(मुसकाकर) और क्या यही कि, मित्रकी बात अवश्य मानूँ ।

विदूषक-आप चिरञ्जीव रहें (उठकर जाना चाहता है)

राजा-मित्र ! ठहरो तो अभी कुछ और कहना है ।

माढव्य-आज्ञा दीजिये ।

राजा-जब तुम विश्राम ले चुकोगे तब हम ऐसे काममें सहायता लेंगे, जिसमें कुछ परिश्रम न करना पड़ेगा ।

माढव्य-क्या खांडके लड्डू खिलाओगे ? तो तो यही अच्छा समय है ।

राजा-अभी कहता हूँ कोई है ?

(द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल–(प्रणाम करके) स्वामीकी क्या आज्ञा है?

राजा– रैवतक ! सेनापतिको बुलाओ ।

द्वारपाल–जो आज्ञा (बाहर जाकर सेनापतिके साथ फिर आया) आओ यह महाराज कुछ आज्ञा देनेके लिये तुम्हारी बाट देखते हैं।

सेनापति–(राजाको देखकर) यद्यपि मृगयामें दोष है, पर हमारे स्वामीको तो गुणदायक हुई है, देखो तो।

(सोरठ)

महाराजका शरीर, कैसा बना है धीर।
खैंचे हैं बारबार, धनुषको चढ़ाके तीर।
ऐसी गढ़न भरी, पर्वतका ज्यौं करी।
श्रमसे न व्यापे घाम, न पावै कलेश वीर।
आवै न तनपै स्वेद, नहीं दौड़ धूप खेद।
दुबराई है शरीरमें, दीखै न कोई पीर।

(समीप जाकर) स्वामीकी जय हो महाराज ! वनमें श्वापद पशुओंके खोज देखे गये हैं, श्रीमान् कैसे निचिन्त बैठे हैं?

राजा–इस माढव्यने मृगयाकी निन्दा करके मेरा उत्साह मन्द कर दिया है।

सेनापति–(हौले माढव्यसे) तुम अपनी बातपर बने रहो मैं स्वामीके मन–सुहाती कहूँगा (प्रगट) महाराज ! इस रांडकेको बकने दीजिये आप ही विचारिये कि, इसमें कितने गुण हैं?

(सोरठ)

देखो तौ मन विचार, मृगयाके गुन हजार।
देती है मोद छांट सभी, उदरको सम्हार।
करती है सह शरीर, चलनेके योग्य वीर।
पशुओंकी चित्तवृत्तिसे, करती है जानकार।
चलता हुआ हरिन, जो मारते हैं जान।

उसको यही सिखाय, करै मोद मन अपार।
ऐसो विनोदरूप मृगया है राजभूप,
देते इसे जो दोष, तो जानौ उन्हें गवाँर।

माढव्य-(रिसके) अरे! महाराज तो अपनी प्रकृतिमें प्राप्त हैं और तू इस वनसे उस वनमें बहुत दौड़ता है, कहीं किसी दिन मनुष्यकी नाकके लोभी बूढे रीछके मुखमें न पड़ जाय।

राजा-भद्र सेनापति! यह आश्रमका निकट है, इस कारण मृगयाकी बड़ाई करनेमें हम तुम्हारा पक्ष नहीं ले सकते, आज तो

(झंझोटीका जिला)

आज करहु आनन्द महिषगणसरन माहिं निजशृंग हिलाई।
तरुअन घनी छाँहमें हरिनी बैठी रौंथ करैं सुख पाई।
शूकर निज अधखुले मुखनसे मोथन मूल खोदकर खाई।
मम धनुकी प्रत्यंचा शिथिलित भई आज विश्राम कराई॥

सेनापति--महाराजकी जो इच्छा।

दुष्यन्त--आगे जो कमनैत बढ गये हैं उनको लौटा लो और सेनावालोंको समझा दो कि तपोवनमें कुछ विघ्न न करें, कारण कि--

(सोरठ)

दीजिये अभी बुझाय, सेनाके लोग जाय।
देखो किसी तपस्वीसे, बोलैं न वे रिसाय॥
रहते हैं यद्दपि शान्त, ज्यों मणी सुर्यकांत।
शीतल है जल उठैगी, सूर्यतेजको दिखाय॥
वैसे ऋषी सुजान, हैं गुप्त तेजमान।
पातेहि तिरस्कार, तेज प्रगटहो लखाय॥

सेनापति--स्वामीकी जैसी आज्ञा।

विदूषक--जा, तेरा उत्साह दिलाना निरर्थक हुआ।

(सेनापति गया)

राजा--(दासियोंकी ओर देखकर) तुम भी अपना यह मृगयाका वेष उतार

डालो, हे रैवतक ! तुम अपना कार्य सावधान हो करो।

सब सेवक--महाराजकी जो आज्ञा (सब गये)

विदूषक--आपने इस स्थानको मक्खियोंसे रहित किया, अब इस शिलापर जो सुन्दर वृक्षकी छायामें है बैठिये, तबतक मैं भी आनन्दसे बैठूँ।

राजा--तुम आगे चलो।

विदूषक--आप आइये।

(इस प्रकार दोनों जाकर बैठे)

राजा--माढव्य ! अभी तुझे नेत्रोंका फल नहीं मिला है, कारण कि तैंने देखने योग्य वस्तुको नहीं देखा है।

विदू०--कारण कि मुझे महाराजका नित्य दर्शन होता है।

राजा--अपनेको तो सभी अच्छा जानते हैं, परन्तु मैं तुझसे इस आश्रमकी शोभा शकुन्तलाके विषयमें कहता हूं।

माढव्य--(आप ही आप) पर मैं इस कहनेका इनको अवसर न दूँगा (प्रगट) हे मित्र ! जान पड़ता है कि आप तपस्वीकी कन्याकी अभिलाषा करते हो 'वह तो' तुम्हारे व्याहने योग्य नहीं।

राजा--मित्र ! पुरुवंशियोंका मन अलीन वस्तुपर कभी नहीं जाता।

(जैजैवन्ती)

नाममात्रको प्रिया हमारी मुनिकन्या मनमान।
जन्मतही तज गई अप्सरा वनमें उसे सुजान॥
दैवयोगसे कण्व महामुनि आ निकले तेहि ओर।
पड़ी देखकर दया गोदले आये निज अस्थान॥
निज पुत्रीसम हितकर पाली बहुविधि लाड़ लड़ाय।
ऐसी विधि मुनिसुता कहावै रूपराशि गुणखान॥

माढव्य--(हँसकर) जैसे किसीकी रुचि पिण्डखजूरसे हटकर इमलीपर लगे इसी प्रकार तुम रनिवासकी स्त्रीरत्नोंको छोड़ उस तापसीके अभिलाषी हुए हो।

राजा--जबतक तू उसे नहीं देखता तभीतक ऐसे कहता है।

माढव्य--जब वह आपको विस्मित करती है तो अवश्य मनोहर होगी।

राजा--(मुसकाकर) बहुत कहांतक कहूँ ?

(राग बिभास)

कहा कहूं वाकी छबि भारी।
प्रथम चित्र जनु लिखो विधाता मूरति फेर सँवारी।
अथवा सकल रूपबतियोंको कियो ध्यान इकबारी।
मूरति चित्रमाहिं जिय डारो इहि विधि बनी पियारी।
मेरे जान लक्ष्मी दूजी आश्रम-माहिं पधारी।
देखत ही अपनो सब कीन्हों तन मन धन बलिहारी।

माढव्य--जो ऐसा है, तो उसके आगे सब रूपवती तुच्छ हैं ?

राजा--मेरे मनमें तो ऐसी ही है--

(राग बिभास)

सकल दोष बिनु रूप उजेरी।
सकल विश्व शोभा मथि डारी नहिं ऐसी कहुँ हेरी।
विन सूंघे जिमि पुष्प मनोहर रत्न वेध बिनु जैसे।
बिनु टूटी नवीन तरुकोपल विना स्वदित मधु तैसे।
अथवा यह अखण्ड पुण्यनको फल जगमें अतिभारी।
केहि बड़भागी देइ विधाता को कहिसके विचारी।

माढव्य--तो तुम उससे शीघ्र विवाह कर लो, नहीं तो हिंगोटके तेलसे चिकने शिरवाले किसी तपस्वीके हाथ यह अखण्ड पुण्यका फल लग जायगा।

राजा--वह परवश है और उसके पिता घर नहीं।

माढव्य--भला तुमपर उसका प्रेम कैसा है ?

राजा--तपस्वीकन्या स्वभावसे ही सकुचीली होती हैं, तो भी--

(काफी)

ऋषिकन्या स्वभाव सकुचीली।
सन्मुख होय छिपावन चाही फिरी सुदृष्टि रसीली।

सो न छिपाय सकी मुसकाई रंग अनंग रँगीली ॥
लाजहेत नहिं सकी प्रकटकर प्रेमभाव गुण शीली।
तौहू मदनदेवकी बाधा रही न गुप्त गहीली ॥

माढव्य--तो क्या देखते ही तुम्हारी गोदीमें आ जाती ?

राजा--फिर जब चलने लगी तो लज्जामें भी उसका प्रेमभाव दिखायी दिया, कारण कि--

(राग खम्माच)

प्रीतिभाव कहा ताहि बताऊं।
चलनलगी जब सखिन संग निज छुओ ठहर निजपाऊं।
बोली चुभी दाभकी एनी ठहरो नेक हटाऊं ॥
उरझ्यो बलकल वसन तरुनमें नेक याहि सुरझाऊं।
यदपि न दाभ वसन नहिं उरझो मिस ताको समझाऊं।
ठिठकि ठिठकि इमि बार बार तिय चितयरही मोघाऊं।

माढव्य--तो अब यहां पथिकाईकी सामग्री संग्रह कर लो, मैं देखता हूँ कि आपने इस तपोवनको उपवन कर दिया।

राजा--हे मित्र! किसी किसी तपस्वीने मुझे पहँचान भी लिया है, विचार करो कि अब किस बहानेसे फिर आश्रममें जाऊं ?

माढव्य--आप राजा हो, तुम्हें बहाना कैसा ? कहो कि, हमको नीवार अन्नका छठा भाग दो।

राजा--मूर्ख ! ये तो हमको और ही भाग देते हैं, जिससे हमारी रक्षा होती है जिसके आगे रत्नोंके ढेर तुच्छ हैं. देखो--

दोहा--अन्य वर्णसे लेत कर, जो नृप सो क्षय होय।
तपसी तपका भाग षट, देते अक्षय सोय ॥

(नेपथ्यमें)

(अब हमारा मनोरथ सिद्ध हुआ)

राजा--(कान लगाकर) अहो ! इस धीर और शान्त बोलसे तो ये तपस्वी होंगे।

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल-स्वामीकी जय हो ! ये दो ऋषिकुमार द्वारपर आये हैं।

राजा--अभी लाओ, देर मत करो।

द्वारपाल-यह लाया (बाहर जाकर ऋषिकुमारोंके साथ आया) इधर आइये, इधर आइये।

(दोनों राजाको देखते हैं)

पहला ऋ० कु०-अहो ! दीप्तिमान् होकर भी इनके शरीरमें कैसी विश्वांसता प्रतीत होती है, अथवा यह उचित ही है, कारण कि यह राजा ऋषियोंसे भिन्न नहीं हैं।

(राग देस)

बड़ा जो तेज धारे हैं, यही राजा हमारे हैं।
नहीं मुनियोंसे ये कुछ कम, बसैं वन मनको कर संयम।
प्रजाके पालनेवारे, यही हैं इनके तपभारे।
इन्हींकी स्वर्गमें चारन, करैं हैं कीरती गायन।
इन्हैं ऋषिराजका पद है, इन्हींसे इन्द्रको मद है।
नहीं इनके सदृश कोई, नहीं है और नहिं होई।

दूसरा-हे गौतम ! क्या इन्द्रका सखा दुष्यन्त यही है ?

पहला-हां, यही है।

दूसरा-इसीसे तो।

दोहा-श्यामोदधियुत भू सकल, भोगंत इक नृपवर्य।
नगरद्वार अर्गल सदृश, नहिं यामें आश्चर्य॥
यहि बाहूबल धनुषबल, इन्द्रवज्रबल पाय।
सुरतिय अरिकुलविजयकी, आश करत सुख पाय १५

दोनों-(राजाके समीप जाकर) महाराजाकी जय हो !

राजा-(आसनसे उठकर) दोनोंको प्रणाम करता हूँ।

दोनों-आपके कल्याण हों. (फल भेंट करते हैं)

राजा--(प्रणामपूर्वक ग्रहण करके) तुम्हारी आज्ञा सुननेकी इच्छा है।

दोनों--यह जानकर कि, आप यहां ठहरे हो, आश्रमवासी कुछ प्रार्थना करते हैं।

राजा--क्या आज्ञा की है ?

दोनों--हमारे गुरू कण्वऋषिके यहां न होनेसे राक्षस आकर यज्ञमें विघ्न करते हैं, इससे सारथिसहित कुछ दिनोंतक आप इस आश्रमकी रक्षा करो।

राजा--यह तो बडी कृपा की है।

विदूषक--(सैन देकर) यह प्रार्थना तो आपके मनमानी हुई ।

राजा--(हँसकर) रैवतक ! हमारी ओरसे जाकर सारथिसे कहो कि धनुष-बाणके सहित हमारा रथ लावै ।

द्वार०--जो आज्ञा (बाहर गया)

दोनों--(प्रसन्न होकर)

(राग आसावरी)

पुरुषनकी पालत सब रीती ।
उनहींकेसे काज करत हो आश्रमधर्म रखत कर नीती ।
शरणागत दुख दूर करनको दीक्षित है पुरुवंश सप्रीती ।
को नहिं जाने महिमा तुम्हरी छाय रही जग पावन कीती।।

राजा--(प्रणाम करके) आप आगे चलो मैं भी आता हूँ।

दोनों--सदा जय रहै (गये)।

राजा--माढव्य ! क्या तेरे मनमें शकुन्तलाके देखनेकी इच्छा है ?

माढव्य--पहले तो बडी चाह थी पर अब राक्षसके नामसे तो बूंदमात्र भी न रही ।

राजा--डरनेकी क्या बात है ? हमारे निकट रहना ।

माढव्य--यहीं मैं राक्षसोंसे रक्षित हूँ ।

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल--महाराज ! रथ सजकर आ गया है, आपके विजय प्रस्थानकी

बाट जोहता है और माताजीका भेजा हुआ करभक दूत नगरसे कुछ संदेशा लेकर आया है।

राजा—(आदरसे) क्या माजीका पठाया आया है?

द्वार०—हां, महाराज!

राजा—तो उसे लाओ।

द्वार०—जो आज्ञा (बाहर जाकर करभकके सङ्ग आया) ये महाराज हैं, सन्मुख जा।

करभक--स्वामीकी जय हो! माताने आज्ञा दी है कि, आजसे चौथे दिन तुम्हारी वर्षगांठके कारण मेरा व्रत होगा, इससे उस समय तुम चिरंजीवीको भी अवश्य आना उचित है।

राजा--इधर तपस्वियोंका कार्य, उधर माताकी आज्ञा, दोनोंका ही उल्लंघन करना उचित नहीं, अब क्या करना उचित है?

विदू०--अब तो त्रिशंकु बनकर मध्यमें ही ठहरे रहो।

राजा--इस समय मेरे मनमें बडी दुविधा है।

चौ०—दूर दूरप कारज दोई।
परे आय मन व्याकुल होई॥
लांघन योग एक हू नाहीं।
शोच होत यातैं मनमाहीं॥
जैसे रुकत शिला पै जाई।
नदी धार दुइ विध बट जाई॥
तैसे भइ गति मोरे मनकी।
क्या उपाय अब शोक मिटनकी॥ १७॥

---

१ यह त्रिशंकु अयोध्याका राजा वसिष्ठसे कहने लगा कि, मुझे ऐसा यज्ञ कराओ जो संदेह स्वर्गको चला जाऊं. उन्होंने कहा ऐसा यज्ञ नहीं हो सकता. तब वह वसिष्ठपुत्रोंके पास गया और यही कहा, वे बोले तू गुरुवचनोंमें विश्वास नहीं करता इससे चाण्डाल हो जा, तब विश्वामित्रने प्रसन्न हो उसे अपने तपोबलसे स्वर्गमें भेजा. वहां देवताओंको अपना फल सुनानेसे फिर नीचे गिरा. विश्वामित्रने बीचमें ही रक्खा वह अबतक भूमि और स्वर्गके मध्यमें है उसकी छाया मगधदेशमें पडती है।

हे मित्र ! तुझे भी तो माता पुत्र कहकर बोली है, सो तू नगरको जाकर मेरी ओरसे माताजीसे निवेदन कर देना कि मैं इस समय तपस्वियोंके कार्यमें लगा हूँ और तू उनके पुत्रकार्यका अनुष्ठान करना।

विदूषक--यह तो सब होगा, पर आप मुझे राक्षसोंसे डरा हुआ तो नहीं समझ गये ?

राजा-(हँसकर) भला तुझमें भय कैसे हो सकता है ?

विदूषक--तो अब जैसे राजाके छोटे भाई जाते हैं वैसे ही मुझे जाना चाहिये ।

राजा--तपोवनका घेरा न होना चाहिये, इस कारण यह सब भीड़ भी तेरे साथ भेजता हूँ ।

विदू०--तब तो मैं अब युवराज हो गया ।

राजा--(मनमें) यह ब्राह्मण बड़ा चपल है, कहीं रनिवासमें जाकर हमारा भेद न कह दे, सो अब इससे यों कहूँ (विदूषकका हाथ पकड़कर, प्रगट) हे मित्र ! केवल ऋषियोंका गौरव रखनेके लिये आश्रममें जाता हूँ. मैं सत्य कहता हूँ कि, तपस्वी कन्याकी मुझे चाहना नहीं है । देख--

(कलिंगड़ा)

कहँ तो हम अरु कहां बाल वह जन्मी कानन आई ।
बड़ी भई हरनिनके सँगमें मैनभेद किमि पाई ॥
मन बहलानेके हित हमने तुमसे कथा सुनाई ।
सो तुम सत्यरूप मति जानो अपने मन द्विजराई ॥

माढव्य--सत्य है (सब बाहर गये.)

दूसरा अंक समाप्त हुआ।

तीसरे अंकका विष्कम्भक ।

(स्थान तपोवन)

(ऋत्विज ब्राह्मणका एक चेला हाथमें कुशा लिये आया ।)

चेला--अहा ! राजा दुष्यंतका कैसा प्रताप है कि, श्रीमान्के आश्रममें प्रवेश करते ही हमारे सब कर्म निर्विघ्न होने लगे ।

दोहा--शरधारणकी क्या कथा, केवल ज्याटंकार ॥
हरत दूरते विघ्न सब, तोहि धनुको हुंकार ॥ २ ॥

अब चलूं, ऋत्विग ब्राह्मणोंको वेदीपर बिछानेके लिये यह कुशा देते हैं (घूमकर और आकाशकी ओर देखकर) हे प्रियंवदा ! यह खसका लेप और नालसहित कमलके पत्ते किसके निमित्त लिये जाती हैं ? सुनकर क्या कहा ? कि, धूप लगनेसे शकुन्तला मुरझा गयी है उसकी शांतिके निमित्त ठंढाइ लिये जाती हूं, तो शीघ्र जा, सखि ! वह कन्या भगवान् कुलपति कण्वकी प्राण है । मैं भी यज्ञ मन्त्रका शांति करनेवाला जल गौतमीके हाथ भेजूंगा ।

(गया)

इति विष्कंभक ।

अंक-३

(कामियोंकेसी दशा बनाये दुष्यन्त आया)

राजा-(श्वास लेकर)

(कान्हरा बागेश्वरी)

आरे मन ! व्याकुल है क्यों परवश है वह बाल ।
जानत हूं तपकी प्रभुताई फिर न कसत जिय हाल ।
"भूमि निमानी जाय वारि ज्यों पीछे करत न चाल ।
सो गति भई मिश्र मोमनकी कह उपाय बिन भाल" ॥

(कामकी बाधा निरूपण करता हुआ)

हे काम ! तुम और चन्द्र हम कामीजनोंके विश्वासघाती हो, कारण कि—

(सोरठका जिला)

तोहि कहत हिमांशू चन्द्र धीर।
कुसुमायुधके फूलनके तीर॥
हमें लगत असत तन देत पीर॥ १॥
शीतल किरणोंमें भरी है अगन।
फुल बान कठिन जिमि वज्र लगन॥
तोहि दया न लगत कन्दर्प वीर॥ २॥
"तब फूलनकी पैनी है अनी।
शिव कोप अगिनि अजहूंलों बनी॥
वड़वा जिमि दहकत सिंधु नीर॥ ३॥
जो सत्य न होती बात मदन।
किमि करत ताप इहिभाँति वदन॥
मकरध्वज बाधत सब शरीर॥ ४॥
तुम कल न देत एक घरी मार।
तो भी ये बड़ो उपकार कार॥
मदलोचनि हित नित होय पीर॥ ५॥
करि नियम कियो तोहिं बलनिधान।
रतिराज कियो सब बिफल मान॥
कीन्हों फर फरतन शर करीर" ॥ ६॥

(व्याकुलसा होकर इधर उधर फिरता है)

हाय! जब यज्ञ पूर्ण हो जायगा तब मैं ऋषियोंसे बिदा होकर अपने दुःखी जीवको कहां बहलाऊँगा (लम्बी श्वास लेकर) प्रियाके दर्शन विना कोई धीरधरैया नहीं है, अब उसीको खोजूँ। (सूर्यकी ओर देखकर) इस कड़ी दुपहरीको प्यारी शकुन्तला सखियोंके संग कहीं मालिनीके किनारेकी लताकुञ्जोंमें विचरती होगी, अब वहीं चलूँ (फिरकर और स्पर्शका निरूपण कर) अहो! यह स्थान पवनसे कैसा सुहावना है "इन नई लताओंमें होकर प्रिया गयी है, कारण कि, जिन डालियोंसे फूल तोडे हैं उनका दूध अभी नहीं सूखा और कौद भी नहीं भरा है, यह स्थान कैसा मनोहर है?"

दोहा--गन्धित सरसिज गन्धते, शित मालिनीतरंग।
लगत सुखद भल बात यह, दाही देह अनंग ॥

(फिरकर और नीचेको देखकर) इन्हीं बेतोंके लतामण्डपमें कहीं प्यारी होगी, कारण कि--

दोहा--यहि निकुंजके द्वारपद, चिह्नित पांडूरेत।
भरानितम्ब एड़ी धसकि, आगिल उठे सहेत ॥

अच्छा ! इन वृक्षोंमें देखू (फिरकर और देखकर प्रसन्नतासे) अहा ! अब मेरे नयन सफल हुए, उस पटियापर फूल बिछाये मनभावनी पौढी है, दोनों सखी सेवामें उपस्थित हैं, अब जो हो, इनके एकान्तकी बातें सुनूंगा (खड़ा होकर देखने लगा)

(दोनों सखियोंसहित शकुन्तला दिखायी दी.)

दोनों सखी--(प्रेमसे पंखा झुलाती हुई) हे सखि शकुन्तला ! यह कमलके पत्तोंकी हवासे तुझे सुख होता है कि, नहीं ?

शकुन्तला--सखियो ! तुम मेरे पंखा क्यों करती हो ?

(दोनों सखी दुःखसे परस्पर देखती हैं)

राजा--शकुन्तलाका शरीर बहुत अस्वस्थ दीखता है (विचारकर) तो क्या ? इसको धूपने सताया है ? अथवा जो मेरी दशा है सो इसकी है (अभिलाष करके) अथवा अब सन्देहसे क्या है?

(कालिंगडा)

हियपर लेप उसीर लगाये।
एक हाथमें कमलनालके,
शिथिलित कंगन शोभा पाये।
जिय कछु दुखित तदपि तन मनहर,
ग्रीषम मदनताप सम पाये ।
पर ग्रीषमको ताप पाय इमि,
नवतिय अँगनाहिं लगत सुहाये।
निश्चय होत मदनने बलकर,
प्यारीके सब अंग तपाये ॥

प्रियंवदा--(हौले अनसूयासे) हे अनसूया ! जबसे उस राजर्षिपर शकुन्तलाकी दृष्टि पडी है तबसे उत्कंठितसी हो गयी है, सो उसीके कारण तो इसको यह बाधा नहीं हुई ?

अनसूया--(हौले प्रियंवदासे) सखी ! मेरे मनमें भी यही सन्देह है, जो हो, इससे पूछना तो चाहिये (प्रगट) हे सखी ! तुझसे कुछ पूछना चाहती हूं, कारण कि, तेरा संताप बढता जाता है ।

शकुन्तला--(शयनसे अधीर उठकर) भला ! क्या पूछना चाहती हो ?

अनसूया--हे सखि शकुन्तला ! हम कामके कारण प्राप्त हुए व्यवहारोंको तो नहीं जानतीं परन्तु कथाओंमें जैसी लगन लगे मनुष्योंकी दशा सुनी है वैसी तेरी दिखायी देती है, सो बता तुझे यह रोग किस कारण हुआ है ? कारण कि मर्मके जाने बिना कोई औषध भी नहीं कर सकता ।

राजा--जैसी मुझे आशंका है वैसे ही अनसूयाको है, मेरे अभिप्रायके अनुसार ही ज्ञान नहीं ।

शकुन्तला--(आप ही आप) मेरी व्यथा तो भारी है, इस समय भी तुरन्त इनसे नहीं कह सकूंगी ।

प्रियंवदा--हे शकुन्तला ! अनसूया भली कहती है, तू अपने रोगकी क्यों उपेक्षा करती है ? दिनपर दिन तेरे अंग दुबले होते जाते हैं अब केवल स्वरूपकी छायामात्र रह गयी है ।

राजा--प्रियंवदाने सत्य कहा है ।

(ठुमरी)

प्रियंवदाने प्यारीसे यह, सच्ची बात सुनाई है ।
आनन छीन कपोल भये मुख, परछाई पियरायी है ॥
उर न उरोज कठोर रह्यो, दुबरी कटि अति दुबराई है ॥
कंधे दोउ झुकि आये हैं, रतिपतिने अधिक सताई है ॥
करुणाके योग्य तन प्यारीको, दुबरी भइ नरम कलाई है ॥
जिमि लू व्यातिथि चमेली बेली, पत्र सहित मुरझाई है ॥

शकुन्तला-हे सखि ! यदि तुमसे न कहूँगी तो किससे कहूँगी ? तुम दोनोंको ही कष्ट दूँगी ।

दोनों-इसीसे तो हम हठकर पूछैं हैं, सुन प्यारी ! यह बात हितूजनोंके सम्मुख कहनेसे ही कुछ दुःख बँट जाता है ।

(जंगला)

राजा-अब बात कहैगी प्यारी,
दुख सुख साथी सखी सयानी ।
अब सब छूटै आनाकानी
पूछत देह व्यथा दुख मानी ॥
संशय मिटै हमारी ॥ १ ॥
बार बार इन चाव दिखायो,
प्रेम सहित लख मोहि जनायो ॥
तौ हू मन नहिं धीरज पायो,
पायो कहा कहै उच्चारी ॥ २ ॥

(राग सहाना)

शकुन्तला-जियकी गति कहा कहूं अली री ।
जवते तपवनको रखवारो,
लखो भूल गई धाम गली री ।
मन तहँ गयो दशा लै वो री,
जिय न लखत कछु बुरी भली री ।

राजा-(प्रसन्न होकर) सुननेके योग्य ही सुना ।

(जिला)

राजा-वचन मनचीतो सुन पायो ।
जेहि मनसिज मो मन विकलायो,
वैसहि प्यारीको भरमायो ।
मनकि लगन नहिं वृथा होत है,
निश्चय अब आयो ॥ १ ॥

शकुन्तला--(मुस्कराकर) अच्छा मैं तुम्हारा कहना करती हूँ(सोचने लगी)

राजा--(आप ही आप) इस समय प्यारीको पलक बिसार कर देखनेका यह अवसर भला है ।

(राग सहाना)

छन्द रचत कस लगत सुहाई ।
फरकत होठ रोम भये ठाढ़े,
बंक भ्रुकुटि इक लीन्ह चढ़ाई ।
गद्गद भये कपोल और मन,
ममहित प्रीति रही झलकाई ॥

शकुन्तला--सखियो ! छन्दका विषय तो सोच लिया, पर लिखनेकी सामग्री नहीं है ।

प्रियंवदा--अपने नाखूनोंसे तोतेके उदरके समान कोमल कमलके पत्ते पर लिख दे ?

शकुन्तला(यथोक्त सामग्री लेकर) सुनो सखियो ! इस छन्दमें अर्थ बना कि नहीं ?

दोनों--हम सावधान हैं, सुना ।

शकुन्तला--बांचती है ।

(झंझोटीका जिला)

निर्दय तव मनकी नहिं जानत ।
रैन दिवस मोहि मैन तपावत,
मन अभिलाष मिलनकी ठानत ।
यह तन काम तपाय सुखायो,
तुम नेकहु मनमें नहिं आनत ॥ १३ ॥

राजा--(झटपट आगे बढ़कर)

केवल तोहि तपावत रतिपति,
पर प्यारी मम देह जरावत ॥

दिन न बिगारत कान्ति कुमोदिनि,
शशिकी सबही कान्ति नशावत ॥ १४ ॥

दोनों-(प्रसन्न होकर) बड़ी प्रसन्नता है कि, अपना मनोरथ शीघ्र सिद्ध हो गया।

[शकुन्तला आदरके निमित्त उठनेकी इच्छा करती है]

राजा-रहने दो इतना परिश्रम मत करो।

(राग टोड़ी)

हैं अति कोमल गात तुम्हारे।
ताप तपायो प्यारी तव तन,
पुष्पसेजके रह्यो सहारे।
सरसिजकी पखुरिनकी गंधी,
छाय रही तेरे तनु सारे।
कष्ट सहनके योग्य देह नहिं,
पौढ़ी रहो धीर उर धारे ॥ १५ ॥

अनसू०-महाराज! शकुन्तलाके समीप इसी चट्टानपर विराजिये।

(राजाके बैठने पर शकुन्तला लजाती है)

प्रियंवदा-तुम दोनों युवाओंका परस्पर अनुराग तो प्रत्यक्ष है, पर सखीका स्नेह मुझसे फिर कुछ कहलाया चाहता है।

राजा-भद्रे! जो इच्छा हो सो कहो. कारण कि, जो कहनेको मन चाहे और कहा न जाय, वह मनमें ताप उत्पन्न करता है।

प्रियंवदा-आपका यह धर्म कहा हैं कि, यदि प्रजामें किसीपर विपत्ति हो, तो राजा उसे दूर करे।

राजा-इससे अधिक राजाका कोई धर्म नहीं।

प्रियंवदा-तो इस हमारी प्रियसखीको बली कामने इस दशापर पहुँचा रक्खा है, सो आप ही इसके अवलम्ब हो कि, दया करके इसके प्राण बचाओ।

राजा—भद्रे ! यह प्रणय तो दोनों ओर तुल्य है, परन्तु सब प्रकार मुझही पर अनुग्रह है।

शकुन्तला—(प्रियंवदाको देखकर) सखी ! रनिवासके विरहमें उत्सुक राजर्षिको यहां क्यों बिलमाती हो ?

राजा—प्यारी !

दोहा--मेरो मन तव वश भयो, बश न औरके मान[१]।
यापर जो शंका करत, तौ सुन जीवनप्रान ॥
मन्मथ बाणन विधित तन, पुनि वेधत तू याय।
और नहीं तन रोम प्रति, तूही रही समाय ॥

अनसूया—महाराज ! हमने सुना है कि राजा बहुत रानियोंके प्यारे होते हैं जिससे सखीके बन्धुजनोंको शोक न करना पड़े ऐसा आप निबाह करना।

राजा—हे भद्रे ! बहुत कहनेसे क्या है ?

(कलिंगड़ा)

बात न ऐसी कहो कुमारी
अधिक बड़े रनिवासमाहिमें,
दो कुलभूषण नारि विचारी।
एक वसुमती अरु यह बाला,
जीवनदाता सखी तुम्हारी ॥

दोनों--तो अब हमारी चिन्ता गयी।

प्रियंवदा--(अनसूयाको देखकर) हे अनसूये ! यह हिरनका बच्चा इधरको देखता हुआ कैसा अपनी माके ढूंढ़नेमें उत्सुक है ! चलो उसे मिला दें।

(दोनों चलती हैं)

शकुन्तला--आली ! मैं इकेली हूँ, दोनोंमेंसे एक तो मेरे पास रहो।

दोनों--इकली कैसे है ? सब भूमिका रखवाला तो तेरे समीप है (गयी)

शकुन्तला--क्या दोनों ही गयीं ?

---

१ अर्थात् जो तुम इसके प्राण रखनेको मुझसे कहती हो तो, मेरे प्राण रखनेको शकुन्तलासे भी कहो।

राजा-प्यारी ! व्याकुल मत हो, यह जन तुम्हारी सेवा करनेको उपस्थित है।

(झंझोटी)

अब जनि शोच करहु मन प्यारी ।
कोमल सरसिजको पंखाकर, कहु तो करूं बयार तुम्हारी ।
सियरी पवन लगेते श्रमकण, सूखहिंगे सुख पैहो भारी ।
जावक लगे चरण अंकमधर, कहु तो दाबूं हरु सुकुमारी ।
सेवक जान वचन कछु बोलो, हे करिकरसम जंघावारी ॥

शकुन्तला-मैं बड़ोंका अनादर कर अपनेको अपराधिनी न करूँगी ।

(उठकर चलनेको होती है)

राजा-प्यारी ! अभी दुपहरी बड़ी कठिन है और तुम्हारे शरीरकी यह दशा हो रही है ।

(जिला)

प्यारी ! असमय काहे जात ।
कठिन दुपहरी परत सुन्दरी, ह्वै हैं तापित गात ।
कुसुमसेज तजि जात धूपमें, उचित नहीं यह बात ।
यह कमलनके पात धरे उर, कहां जात अलसात ॥

(हाथ पकड़कर बैठाया)

शकु०--हे पुरुवंशी ! नीतिका पालन करो, कामकी सताई हुई भी मैं स्वतन्त्र नहीं हो सकती ।

राजा-हे भीरु ! गुरुजनोंका डर मत करो, महर्षि कण्व धर्मको जानते हैं, वे कुलपति इसमें तुमको कुछ दोष न देंगे ।

(कलिंगडा)

मनमें भय जनि करहु पियारी ।
यहि गन्धर्व रीतिसों बहुतिक, ब्याहि गई ऋषिराजकुमारी ।
मात पिता मन हर्ष बढ़ायो, कीनों तिनको आदर भारी ॥

शकु०--अच्छा ! मुझे छोड़ो तो मैं फिर अपनी सखियोंसे कुछ कह आऊं ।

दुष्यन्त-अच्छा ! छोड़ दूंगा ।

शकुन्तला--कब ?

(जैजैवन्ती)

राजा—छांड़ देहु इतनी मन करकै।
जिमि कोमल सद् पुष्प पायकर,
मधुकर अधिक प्रेममें भरकै।
मन्द मन्द मधु लेत बुझावत,
तनकी तपन पियारी अरकै।
तैसे हि अधर अछूत तुम्हारे,
मैं जब करिहौं पान सुधरकै।
यह सुख पाय प्रिया तोहि छोड़ूं,
जात कहां मम जिय मन हरकै॥

(शकुन्तलाका मुख उठाता है और वह बरजती है)

(जैजैवन्ती)

शकुन्तला—जान देहु मैं निपट अकेली।
बार बार विनवत पिय तुमसे,
पास नहीं कोउ सखी सहेली।

(चलकर और फिर लौटकर)

यदपि रही प्रिय मनकी मनमें,
बात करी दोइ पल मनमेली।
परवश जान छमा तउ करियो,
जात न निजवश सत्य कहेली।
प्यारे मुहि न बिसारहु मनते,
लाज राखियो बांह गहेली॥

(चलदी)

(दादरा)

राजा—कैसेहु बिसरन योग पियारी।
दूरि भई हो भयो कहा है, मो मन तो तुम संगति धारी।
कितहू गुड़ी उड़ी रहै चाहो, डोर उड़ावनकर रहै सारी॥

1 यहांसे बलिहारी पदतक संस्कृतनाटकका विषय नहीं है।

शकु०–(आप ही आप) राजर्षिकी बातें ऐसी हैं कि, जिनको सुनकर एक पग भी आगे नहीं चला, जाता, तो इनके पाससे निठुर बनके कैसे चली जाऊं ? अच्छा! इस पेड़की ओटमें छिपकर देखूं यह मुझे कैसा चाहते हैं?

(काफी)

राजा--प्रियको कौन भाँति समझाऊ।
प्रिया विना यह फूलवाटिका,
कंटक तुल्य ताप तन पाऊँ।
बांह छुड़ाय गयी निर्मोही,
अनघेरी सम अब कहँ जाऊं॥
जिन प्रभु अस कोमल निर्मायी,
किमि हिय वज्र समान लखाऊँ॥

शकुन्तला--(आप ही आप)

दोहा-प्रीतिमान अस पीयको, तजिक कैसे जाउँ।
सुनि सुनि बात प्रेमकी, आगे परत न पाउँ॥

राजा–(आप ही आप) अब यहां रहकर क्या करूं ? (चलता हुआ नीचे देखकर) अहा ! अब तो ठहरूंगा, यह प्राणप्यारीके हाथसे गिरा हुआ कमलका कंकन मेरे निमित्त प्रेमका बन्धनरूप प्राप्त हुआ है. (उठाकर) अहा ! इसमें कैसी उसीरकी गन्ध आती है, इसके छूनेसे मन शीतल होता है, क्यों न हो ? प्यारीके हाथका ही तो है।

शकु०–(आप ही आप) हाय ! इस लगनसे देह ऐसी दुबली हो गयी है कि, हाथसे गिरा कंकण भी नहीं जाना ! चलूं, अब इसी मिससे फिर दिखायी दूं।

राजा–(देखकर) अहा !

(झंझोटी)

इन नैननको भाग बड़ाई।
जिमि सुरंक ढिग कमला आवत,
तिमि आवत मम ढिग प्रिय सोई।

दरश पाय शीतल भइ छाती,
जिमि चातक स्वातिहि सुख होई।
जेहिको सत्य सनेह जासुपर,
सो पावत यह सत्य कहोई ॥

शाकुन्तला–गिरा पहुँचेसे है कंकन, जु पाया हो तो दे दो जी।
करूं बिन्ती तुम्हारी मैं, पसारूं अंचरा हो जी।
तुम्हारे कामका नाहिं कुछ, मेरी बहियां लगै सूनी।
हँसी होगी चत्रैयोंमें, विचारो अपने मन सों जी।

(जिला)

राजा–कंकण तब देहों मेरी प्राण अधार।
अपन करन जब दो पहरावन, बाँह गहों सुकुमार।
विनवत मिश्र जोरिकर दोऊ. मानों वचन हमार।
शकु०–टार सकत नहिं वचन तिहारे, पहरावहु भरतार।
राजा–आओ ! विराजो शुभगशिलापर, तनमन डारौं वार।
शकु०–(बैठकर) बेगि पहराओ प्रिय मोहिं,
डरलागे लखै न कोउ सगवार।

राजा–(प्रसन्न होकर आप ही आप) अहा ! अब मनोरथ पूरा हुआ, जो प्यारीके मुखसे पिया शब्द सुना, धन्य कुसुमायुध ! (पहनाता हुआ) अहा !

दोहा–हरित भई फिर वेलसी, कोमल प्यारी बाहिं।
जिमि शिवक्रोध मदन मुयो, जियो अशोशहि माहिं॥

(प्रगट) प्यारी ! यह कंकण ठीक नहीं आता, कहो तो फिरसे बनाके पहरा दूं ?

शकु०–जैसा जी चाहै वैसा बनाकर पहरा दो।

राजा–(बनाता हुआ)

दोहा–प्यारी यह कंकण नहीं, याहि अर्धशशी जान।
तेरी सुन्दर भुजनपर, बलिहारी कर प्रान॥

(दादरा)

शकुन्तला–हमैंतो पिया चन्द न परत लखाई ।
करकमलनकी उड़त महारज दृष्टि रही धुँधराई ॥
राजा–आज्ञा होय पवन निज मुखसे, सब रज देहुं उड़ाई ।
श०(मुस्काकर) दयाकरहु परतीततुम्हारीहोतनमोहिपुरुराई ।
राजा–कहुं नवीन सेवककी तुमने प्यारी लखी ढिठाई ।
शकुन्त०–बातनमें को जीति सके तुम्हैं, कीजे जस मनभाई ।
राजा–(धीरेसे फूँक मारी)
शकुन्त०–बस महाराज ! अब मेरी दृष्टि निर्मल हो गयी दीखनेलगा ।

(पीलूका जिला)

पिया विनय केहिभाँति सुनाऊं ।
एको गुण निजमें नहिं देखत, जेहि तुम्हरे मन भाऊं ।
तुम्हरी सहज दया अति लखिकै, मैं मनमाहिं लजाऊं ।
निजमुख दासी भई तुम्हारी, कहि अस तुम्हैं हँसाऊं ।

(कालिंगड़ा)

राजा–यहिते अधिक और कहा प्यारी ।
कीन्हीं अधरसुधा सौरभसों,
सबविधि पूरण साध हमारी ।
प्राणप्रिया मुखचन्द तिहारो,
निरखत रहूं नित्य सुकुमारी ।
यहिते अधिक न हमैं चाहिये,
तन मन बलिहारी बलिहारी ।

(नेपथ्यमें)

(हे चकई ! अब चकवेसे न्यारी हो रात आयी)

शकुन्तला–(कान लगाकर और सटपटाकर)
हे पुरुराज ! मेरे शरीरका वृत्तान्त जाननेके निमित्त भगवती गौतमी इस ओर ही आती हैं, तुम तनक वृक्षकी आड़में होजाओ ।

राजा–अच्छा (वृक्षकी ओटमें हो जाता है)

(हाथमें कमंडल लिये गौतमी दोनों सखियों समेत आयीं)

दोनों सखी–आर्या गौतमी ! इधर चलो इधर चलो।

गौतमी–(शकुन्तलाके समीप जाकर) पुत्री ! तेरे शरीरका ताप कुछ घटा कि, नहीं ?

शकुन्तला–हां, कुछ घटा है।

गौतमी–इस कुशके जलसे तेरा शरीर बाधारहित हो जायगा (शिरपर कुशका जल छिड़कती है) पुत्रि ! अब दिन छिपनेको है आ कुटीको चलैं। (चलती हैं)

शकुन्तला–(आपही आप) हे मन ! जब तेरे सम्मुख मनोरथ पूरे होनेका अवसर आया, तब तो तैंने कातरता न छोड़ी, अब प्रिय वियोगमें उस सन्तापसे तेरी क्या गति होगी ? (कुछ चलकर बोली) हे सन्ताप हरनेवाली लताकुंज ! मैं तुझसे बिदा होती हूँ, फिर भी सुखभोगके निमित्त तुझे देखूंगी।

(गौतमी और सखियोंके साथ शकुन्तला दुःखी होकर गयी)

दुष्यन्त(पूर्वस्थानमें आकर औ श्वास लेकर) अहो ! मनोरथ सिद्ध होनेमें अनेक विघ्न होते हैं।

(गौरी)

मन अब कहा वृथा पछताये।
बार बार जब निज अँगुरिनते,
प्यारीने दोउ होठ दुराये।
मीठे वचन नहीं नहिं हितसों,
बोली अपनो मुख मुरकाये।
ताही समय कुरंगलोचनी,
मुख उचकायलियो सुख पाये।
पै अधरामृत पान करनको,
समरथ भयो न वैन सुनाये॥

तो अब मैं कहां जाऊं अथवा प्यारीके भोगेहुए इसी लताकुंजमें एक मुहूर्तको बैठूं (चारों ओर देखकर)

(दादरा)

बिन प्यारी मन थिर न रहाई ।
फूलबिछी यह शिला सेज वहि,
अरु यह सरसिज पत्र लखाई ।
जेहि पर मदन व्यथा प्यारीने,
नखसे लिख निज सखिन सुनाई ।
यह मृणालको कंकण सोई,
करते गिरत जान नहिं पाई ।
सूनो बेतकुंज लख अस यह,
हमसे तो अब त्यागि न जाई ॥

(नेपथ्यमें)

(काफी)

राजन्-सन्ध्यासमय आय नियराई ।
सवनकर्म आरंभ करत हित,
वेदी प्रज्वलित कीन सुहाई ।
चहूँ ओरसे राक्षसगनकी,
छाया तेहिपर परत दिखाई ।
सन्ध्यामेघ समान श्याम अरु,
पीत वरनकी है भयदाई ।
त्रासदेत तपसिनको अतिही,
आय धनुर्धर करहु सहाई ॥

दुष्य०–हे तपस्वियो ! मत डरो यह मैं आया (गया)

(तीसरा अंक पूर्ण हुआ)

चौथे अंकका विष्कम्भक।

(स्थान तपोवन)

(दोनों सखी फूल बीनती आयीं)

अनसूया–हे सखि प्रियंवदा ! यद्यपि गन्धर्वविधिसे शकुन्तलाका विवाह हुआ और पति भी तुल्य ही मिला, इससे तो मन प्रसन्न हुआ तथापि चिन्ता न मिटी।

प्रियंवदा--कैसे ?

अनसूया--इससे कि आज वह राजर्षि तपस्वियोंका यज्ञ पूर्ण कराय ऋषियोंसे बिदा हो अपने नगरको गया है, वहां अन्तःपुरमें पहुँचकर जाने उसे यहांकी बात स्मरण रहै कि नहीं ?

प्रियंवदा--विश्वास रक्खो, ऐसे महात्मा पुरुष विरुद्धस्वभावके नहीं होते, पर चिन्ता तो यह है कि, पिता कण्व इस वृत्तान्तको सुनकर जानैं क्या कहेंगे ?

अनसूया--जहांतक मैं देखती हूँ इससे सुखी होंगे।

प्रियंवदा--क्यों ?

अनसूया--उनका संकल्प था कि, यह कन्या हम गुणवान्को देंगे जो दैव वश स्वयं ऐसा वर मिला है, तो गुरुजन विना प्रयास ही कृतार्थ हुए।

प्रियंवदा--(फूलोंकी टोकरीको देखकर) सखी ! पूजाके योग्य फूल तो मैं बीनचुकी।

अनसूया–(शकुन्तलासे) सुहाग देवीकी पूजा भी तो करानी है, थोडे और बीनलें।

प्रियंवदा--अच्छा (दोनों फूल बीनती हैं)।

(नेपथ्यमें)

हे ! यह मैं हूँ।

अनसूया--(कान देकर) हे सखी ! यह किसी अतिथिकासा बोल है।

प्रियंवदा--क्या है ? शकुन्तला तो कुटीपर है, ही (आप ही आप) है तो परन्तु इस समय उसका चित्त ठिकाने नहीं है।

अनसूया–चलो–इतने ही फूल बहुत हैं।

(दोनों जाती हैं)

(नेपथ्यमें)

हे अतिथिका निरादर करनेवाली !

(चौपाई)

तपोधनी मोहिं सकल बखानत,
सन्मुख आत न तू मोहिं जानत।
जेहि अनन्यमन चिन्ता करई,
मन वच कर्म जाहि चित धरई।
सो जन नारि भूल तोहिं जाई,
समझाये सुधि करै न राई।
जिमि मद्मत्त प्रथम की बानी,
करत स्मर्ण न जान सयानी।

प्रियंवदा–हा धिक ! बुरा हुआ, किसी पूजनीयका अपराध बेसुधीमें शकुन्तलासे बनगया (आगे देखकर) यह तो कोई ऐसे वैसे नहीं, यह महा क्रोधी दुर्वासऋषि हैं। इस प्रकार शाप देकर रिसभरे डिगमिगाते पैरोंसे शीघ्र शीघ्र लौटे जाते हैं, इनको छोड़ अग्निके सिवाय और किसमें भस्म करनेकी सामर्थ्य है ?

अनसूया–तू जा पावोंमें पड़कर जैसे बने मनाकर लौटा ला, तबतक मैं इनके निमित्त अर्घ्य संजोती हूं।

प्रियंव०–अच्छा (चली)

अनसूया–(कुछ दूर चलकर गिरी) अहो ! जलदी चलकर मैंने फूलोंकी टोकरी भी हाथसे गिरा दी (फूल बीनने लगी)

(प्रियंवदा फिर आयी)

प्रियंव०–हे सखि ! यह तो स्वभावसे ही टेढ़े हैं, सो किससे मान सकते हैं ! पर तथापि मैंने कुछ सीधा कर लिया है।

अनसूया–इनका थोड़ा मानना भी बहुत है, कह तो कैसे माने ?

प्रियंवदा–जब फिरनेकी इच्छा नहीं की तब मैंने प्रार्थना की, भगवन्! आपके तप प्रभावको न जाननेवाली इस कन्याका यह प्रथम अपराध है, इसको पुत्री विचारकर क्षमा करो।

अनसूया–तब फिर।

प्रियंवदा–तब कहने लगे कि, मेरी वाणी झूठी नहीं होती, परन्तु जब राजा अपनी सुध दिवानेवाली अंगूठीको देखेगा, तब शाप मिट जायगा. यह कहकर अन्तर्धान हो गये।

अनसूया–तो अभी आश्वासनकी आशा है, कारण कि. जब वह राजर्षि चलने लगा,तो अपनी नामखुदी अंगूठी उतारकर सुध दिवानेके निमित्त शकुन्तलाको पहना दी थी, इससे शापनिवृत्तिका सहज उपाय शकुन्तलापर है।

प्रियंवदा–चलो सखि ! अब देवकार्यसे निवृत्त हों (इधर उधर फिर कर और देखकर)

प्रियंवदा–अनसूया ! देख तो बायें हाथपर कपोलधरे चित्रके समान प्यारी सखी बन रही है। स्वामीकी चिन्तासे यह तो अपनेको भी नहीं जानती, दूसरे आगन्तुकको तो बातही क्या है ?

अनसूया–हे सखी ! यह शापका वृत्तान्त हम तुमतक ही रहे, स्वभावसे कोमल सखीकी इससे रक्षा करनी चाहिये।

प्रियंवदा–ऐसा कौन होगा जो गरम जलसे नई मल्लिकाकी लहलहीं लताको सींचेगा ? (दोनों गयीं)

इति विष्कम्भक।

अंक ४.



(आश्रमका समीप)

चेला--महात्मा कण्व अभी परदेशसे आये हैं, मुझे समय देखनेके निमित्त आज्ञा दी है कि, रात कितनी शेष है? सो मैं बाहर देखनेको जाता हूं कि, रात कितनी है (इधर उधर फिरकर और आकाशकी ओर देखकर) अहा! यह तो सबेरा हो गया।

(कलिंगडा)

प्रात कि कैसी प्रभा दरशाई।
औषधिपतितो एक ओरको अस्ताचल शिखरनको जाई।
दूजी ओर सरोजाधिप रवि उदय होत कस तेज लखाई॥
दोउ तेजधारिनकी युगपत सम्पत विपत सुरीत सिखाई।
कैसेहु सुख दुख परे तदपि नर धीरज धार सहे कठिनाई॥
अस्ताचल शशि गयो कुमुदिनीध्यानमात्र शोभा रहिछाई।
देत न सब आनन्द दृष्टिको जिमि विदेशपतिका बिलखाई॥
दुस्सह होत वियोग दुःख तेहि कैसे शोकहि प्रगट लिखाई॥

(अहा!)

" जो निशिपति धरि पाँव मेरुपै,
सब निशि विचरे हिय हरषाई।
तम समूहको नाश किरण निज,
श्रीहरि धरम समीप लगाई॥
तेज गवाँय गिरे नभते सोउ,
भोर समय रवि दियो दबाई।
या जग माँहि बड़ेहु बड़ेनकी,
थिर सम्पति नहिं देत दिखाई॥ "

(अनसूया पटको उठाकर आती है)

अनसूया--(आप ही आप) यद्यपि मैं संसारी बातोंको नहीं जानती

तो भी इतना तो मानती ही हूँ कि, उस राजाने शकुन्तलाके साथ अन्याय किया है।

शिष्य--तो अब गुरुजीसे चलकर कहना चाहिये होमका समय हुआ।

(गया)

अनसूया--मैं उठी भी तो क्या हुआ, करने योग्य भी निज कार्योंमें मेरे हाथ पैर नहीं चलते, अब तो निर्दयी कामकी अभिलाषा पूरी हुई, जिसने असत्यवादी शून्यहृदय राजाके वशमें हमारी सखीको डालकर इस दशाको प्राप्त किया, अथवा यह दुर्वासाके कोपका विकार है, नहीं तो वह राजर्षि क्यों ऐसे वचन देकर फिर सन्देशपत्र भी न पठाता, अच्छा यहांसे (अभिज्ञान) सुध दिवानेवाली अँगूठी उसके पास भेजनी पडेगी परन्तु इन दुःखशील तपस्वीजनोंमें किससे कहूँ, जो मैं यह जानती कि शकुन्तलाका दोष है तो अभी तीर्थसे लौटे हुए पिता कण्वसे न कह सकती कि राजा दुष्यन्तसे शकुन्तलाका व्याह हो गया और वह गर्भवती भी है तो अब इसमें क्या करना चाहिये।

(प्रियंवदा हँसती हुई आयी)

प्रियंवदा--सखी ! जल्दी चलो शकुन्तलाकी बिदाका कार्य करैं।

अनसूया--तू क्या कहती है ?

प्रियंवदा--सुन जब मैं शकुन्तलाके समीप सुशयन (रातमें सुखसे सोयी) पूछने गयी कि, इसी समय लाजसे नीचा शिर किये बैठीके समीप पिता कण्व आये और हृदयसे लगाकर बोले पुत्रि ! भाग्यकी बात है कि, धूमसे व्याकुल दृष्टिवाले भी यजमानकी आहुति अग्निमें ही गिरी। हे पुत्रि ! योग्य शिष्यको विद्या देनेके समान तुम अशोचनीय हो सो आज ही ऋषियोंके संग तुमको पतिके समीप भेज दूंगा।

अनसूया--सखि ! यह बात महात्मा कण्वसे किसने कह दी ?

प्रियंवदा--अग्निहोत्रस्थानके निकट ही छन्दोमयी अशरीरी वाणीने उनसे कहा।

दोहा--प्रगट होत शमिगर्भसे, जिमि पावक भगवन्त
प्रजाहेत तिमि तव सुता, धरत तेज दुष्यन्त।

अनसूया–(प्रियंवदाको आलिंगन करके) सखि ! यह बात सुनकर तो मुझे बड़ा सुख हुआ, परन्तु शकुन्तलाका आज ही बिदा होना विचार कर दु:ख सुख समान हो रहा है, साधारण सन्तोष है।

प्रियंवदा–सखि ! हमारी चिन्ता सुखरूप हो जायगी, यदि हमारी सखीको सुख मिले।

अनसूया–इसीसे मैंने इस आमकी शाखापर लटकते हुए इस नारियलमें नित नयी नागकेशरकी माला रक्खी थी, तू उसे उतार ले, तबतक मैं भी उसके निमित्त मृगरोचना, तीर्थकी मृत्तिका, दूर्वा, किसलय मंगलके निमित्त ले आऊँ।

प्रियंवदा–यही कर।

(अनसूया गयी और प्रियंवदाने माला उतारी)

(नेपथ्यमें)

हे गौतमी ! शार्ङ्गरवमिश्रोंसे कहो कि शकुन्तलाको लेकर जाना होगा।

प्रियंवदा–(कान लगाकर) अनसूया ! शीघ्रता कर यह हस्तिनापुर जानेवाले ऋषि बुलाये जाते हैं।

(हाथमें सामग्री लिये अनसूयाका प्रवेश)

अनसूया–आओ सखि ! चलैं ।

(इधर उधर फिरने लगीं)

प्रियंवदा–(देखकर) यह देखो, सूर्य उदय होते ही शिरसे स्नान किये शकुन्तला बैठी है, नीवार हाथमें लिये स्वस्तिवाचन करनेवाली प्रतिष्ठित तपस्विनियाँ आशीश दे रही हैं, हम भी इसीके समीप चलैं।

(गयी)

(ऊपर लिखी भाँति शकुन्तला आसनपर बैठी दीखती है)

एक तपस्विनी–(शकुन्तलाकी ओर देखकर) हे पुत्रि ! तू स्वामीसे बहुत मान पाकर महारानीपदको प्राप्त हो।

दूसरी–वत्से ! तू वीरकी माता हो।

तीसरी–पुत्रि ! तू पतिको बहुत प्यारी हो।

(इस प्रकार आशीर्वाद दे गौतमीके सिवाय सब गयीं)

दोनों सखी--(समीप जाकर) हे सखि ! अच्छे स्नान हुए।

शकुन्तला--सखियो ! भले आयीं, यहां बैठो।

दोनों--(मंगलपात्र हाथमें लिये बैठकर) अच्छा सखि ! सज्जित हो जबतक हम मङ्गलउपचारका उबटन कर दें।

शकुन्तला--यह भी बहुत है, कारण कि, अब तुम्हारा शृङ्गार मुझे दुर्लभ हो जायगा।

(आंसू डाल दिये)

दोनों--सखि ! ऐसे मंगलकार्यमें तुझको रोना उचित नहीं है।

(आंसू पोंछकर वस्त्र पहराती है)

प्रियंवदा--सखि ! तेरा सुन्दर रूप तो अच्छे २ आभरणोंके योग्य है, परन्तु जो आश्रममें वल्कलादि मिल सकते हैं, उन्हींसे शृङ्गार करती हूँ, पर इनसे रूप बिगड़ता है।

(दो ऋषिकुमार हाथमें वस्त्राभूषण लिये आते हैं)

दोनों ऋषिकुमार--यह भूषण वस्त्र हैं भगवतीजीको पहराओ।

(सब देखकर चकित होती हैं)

गौतमी--बेटा नारद ! यह सब कहांसे आये ?

पहला--पिता कण्वके प्रभावसे।

गौतमी--क्या मानसी सिद्धिसे प्राप्त हुए ?

दूसरा--नहीं सुनो, जब भगवान् कण्वने हमको यह आज्ञा दी कि, शकुन्तलाके निमित्त वनस्पतियोंसे फूल ले आओ, तब तुरन्त ही—

(विभास)

अस प्रभाव मुनिवरको भारी।
माङ्गलीक शशिसम अति निर्मल,काहू तरुवर दीन्ह सुसारी,
चरण शृँगार हेत केहु तरुवर, दियो महावर मंगलकारी।
वनदेवन औरै बहुतेर, भूषन वसन दिये सुखकारी।

पहुँचे तक तिनकर अस दीखे,
जिमि नवशाखा तरु सुकुमारी ॥

प्रियंवदा-(शकुन्तलाको देखकर) वनदेवियोंसे वस्त्राभरण मिलनेके शकुनसे यह सूचित होता है कि तू स्वामीकेघर राजलक्ष्मी भोगैगी ।

(शकुन्तला लाज गयी)

पहला•ऋषिकु०-गौतम ! आओ आओ, स्नानकर आये हुए मुनिवरसे यह वनदेवियोंके सत्कारका वृतान्त वर्णन करैं ।

(दोनों गये)

दोनों सखि-हे अली ! हम भूषण वस्त्रोंको क्या जानें, पर चित्रविद्याके बलसे तेरे अंगोंमें पहनाती हैं ।

शकुन्त०-तुम्हारी चतुरता मैं जानती हूं (दोनों शृङ्गार करने लगीं)

(स्नान किये कण्वका प्रवेश)

कण्व--प्यारी बेटी आज जाय प्रीतमके भवन ।
चित्त है उदास आज कंठ रुकै बार बार,
धीरजके राखबेको कौन है जतन ।
नयनोंमें नीर भरै चित्त नहीं चैन लहै,
धुँधली दृष्टि भई पुत्रिका गमन ।
हमसे वनवासी जब प्रेमसे अधीर होत,
बेटीकी बिदाको दुख कैसे फिर गृहीके तन ।
लाड़हू लड़ाय पालपोसके बढ़ायो जाय,
आज एक साथ हाय ! परी है तजन ॥

(मन बहलानेके निमित्त इधर उधर टहलने लगे)

दोनों स०-प्यारी ! हम शृङ्गार कर चुकीं अब यह क्षौमवस्त्रका जोडा पहरो।

(शकुन्तला पहरती है)

गौतमी-बेटी ! यह नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भेर तेरे पिता तुझे देखने आते हैं सो तू इन्हें आदरसे ले ।

शकुन्तला–(लज्जापूर्वक) पिता ! प्रणाम करती हूँ।

कण्व–पुत्रि !

दोहा--नृप ययातिकी जिमि भई, शर्मिष्ठा प्रिय नारि।
पतिव्रता तिमि होय तू, पतिको प्राण अधारि॥
जिमि तिन पायो पुरुषवन, चक्रवर्ति गुणमूल।
तिमि उपजाहि तेरो सुवन, हरन सकल जगशूल॥

गोतमी०–भगवन् ! यह तो वर है अशीश नहीं।

कण्व–पुत्रि ! आओ, तत्काल आहुति दीहुई अग्नियोंकी प्रदक्षिणा कर लो।

(सब परिक्रमा करती हैं)

कण्व–(ऋक् छन्दसे अशीश देते हैं)

(देश)

यह जग पावनि अगिनि सुहाई।
वेदकि चहुँ ओर विराजित, तटपर दर्भ बिछाइ।
समिध पाय प्रज्वलित भइ भारी, हविष गन्ध सरसाई॥
नाशत अघ सबके सो तुमको, शुद्ध करै सुखदाई॥

सो अब तू शुभ घड़ीमें बिदा हो (चारों ओर देखकर) जो संगमें जायँगे बह मिश्र कहां हैं ?

शिष्य–(आकर) मुनिजी ! हम यहां हैं।

कण्व–अपनी बहनको मार्ग बताओ।

शार्ङ्गरव–इधर आओ भगवती ! इधर आओ।

(सब चलते हैं)

(बिहाग)

हे हे आश्रमके सब तरुवर !
आज शकुन्तला पतिपुर जाई।

जेहिने सींचे विना तुम्हारे,
कहुँ जल पान कियो नहिं राई।
अभरणकी रुचि तदपि तुम्हारे,
फूलन लिये प्रीति अधिकाई।
फूलत फलत निहारि तुम्हैं जिन,
सुवन समान मोद मन पाई।
आयसु देहु जात पतिके घर,
तुमसे चाहत होन बिदाई॥

(कोकिलाका बोल बताकर)

यह देखो—

दोहा—वनवासिनके बन्धु यह, तरुवर पुत्री हेत।
कोकिलशब्द सुनायकर, गमनहु आज्ञा देत॥ ९॥

(नेपथ्यमें--राग काफी)

याको मार्ग होहि सुखकारी।
हरित कमलिनी छाये सरवर ठौर ठौर पावै सुकुमारी।
सरसनदी अरु सघन वृक्ष सब मिलैं मार्गमें तनश्रमहारी।
कमलपुष्परज सदृश मृदुल अति भूमी मिले तुम्हैं मगसारी।
शान्तऔर अनुकूल सबहिविधि गन्ध बहाहो अभिमतचारी।

(सब विस्मय होकर सुनते हैं)

गौतमी—हे बेटी! जातिजनोंके समान हित करनेवाली तपवनकी देवियें तुझे अशीश देती हैं, इन्हें प्रणाम कर।

शकु०—(प्रणाम करके हौले प्रियंवदासे)

(आसावरी)

सखि री मेरो आगे परत न पाउँ।
आर्यपुत्रसे यदपि मिलनको है मनमें अतिचाउ।
तदपि बड़ी भई एती जेहिवन तेहि तज कैसे जाउँ॥
प्रिय०-आली नहीं अकेलो दुख तोहिं है यह लखि पछताउँ।
ज्योंज्यों समय वियोग निकट चलि आवत मन अकुलाउँ॥

सकल तपोवन छई उदासी देख तोहि दिखराउँ ।
मृगी न लेत कवल मुखमाहीं अब वन नचत न मोर ।
पीरेपात गिरत अँसुअनसे करत न कोकिल शोर ॥

शकुन्त०—(सुध करके) पिता ! मैं इस वनज्योत्स्नासे भी भेंट लूं इसमें मेरा बहनकासा प्रेम है ।

कण्व—इसमें मैं तुम्हारे सहोदरकेसे प्रेमको जानता हूं, यह माधवीलता दाहिनी ओर है ।

शकुन्त०—(लताके समीप जाकर) ।

(राग काफी)

हे वनकी छबिदाता बेली ।
यदपि माधवी आमवृक्षसे लिपटिरही मम तदपि सहेली ।
शाखारूप पसारभुजा निज मिलले अति सुखदान नवेली ॥
फिर संगम दुर्लभ मनमानत दूरजाय हौं पड़ूं अकेली ।

(बिहाग)

कण्व—बेटी! जैसा पति तेरे हित मैं संकलप कियो मनमाहीं ॥
तैसोइ तैं पायो प्रियभर्ता अपने पुण्य प्रताप लखाहीं ॥
अस यह नवमल्लिका आम सँग लिपटरही मनदेगलबाँहीं
मैं निचन्त अब भयों लाड़ली तुम दोऊ इकसंग विवाहीं ॥

पुत्री ! देर मत कर, अब विदा हो ।

शकुन्तला—(दोनों सखियोंसे) हे सखियो! इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपती हूं ।

दोनों—और हमैं किसको सौंपे जाती है ? (आंसुओंसे रोती हैं)

कण्व—अनसूये ! इस समय रोना उचित नहीं है, इस समय तो शकुन्तलाको धीरज बँधाना चाहिये ।

(सब चलते हैं)

(राग बिहाग)

शकुन्तला—पिता कुटीके निकट चरति जो,
हरिनी गर्भभार अलसाई ।

क्षेमकुशलसे जनै जबै तुम,
समाचार मोहि देहु पठाई ।
भूल न जैयो विनय करत हूं,
एहिमें नेह मेरो अधिकाई ॥

कण्व–बेटी! तुम्हैं हरिनि जब व्यावै समाचार देहों पहुँचाइ ।

शकुन्तला–(कुछ चलकर और देखकर) यह कौन है? जो मेरा अंचल नहीं छोड़ता ।

(कलिंगड़ा)

कण्व–अहै वही मृगछौना तेरो ॥
जब जब चिरो दाभते याहि मुख,
व्रणित भयो पुत्री तैं हेरो ।
तब तब तेल हिंगोट लगायो,
लाड़ लड़ाय लड़ाय घनेरो ।
ससा खवाय खवाय पुत्र सम,
पालनकर सब कष्ट निबेरो ।
सो अब किमि तज सकत सुता तोहि,
भयो तेरो चरणनको चेरो ॥

शकुन्तला–धीरजधर मनमें मृग जाये ।
अनतजात मैं संग छोड़ अब,
पाछे क्यों आवत अकुलाये ।
तव जननी जनमत तज तोही,
मरी पाल म लाड़ लड़ाये ।
मो पाछे अब पिता हमारे,
तोहिं पालि हैं नेह बढ़ाये ।
पाछे लौटि जाहु मृगछौना,
मानत नहिं काहे समुझाये ॥

(आंसू गिराती चलती है)

(चौपाई)

कण्व–**धीरज बांध हिये सुकुमारी। परवशशोक विलोचन वारी।**
उन्नत वरुनी दृगसे आई। लखनहोहि नहिं पंथ सुहाई।
ऊंची नीची भूमि लखाई। ठोकर खा न गिरो कहुँ जाई॥

शार्ङ्गरव–भगवन् ! सुना जाता है कि, जहांतक जलाशय न मिलैं वहीं तक प्रियजनोंको पहुँचाना चाहिये। अब यह सरोवरका तट है, यहां संदेशा देकर आप लौट जाँय।

कण्व–तो आओ, थोडी देर इस वटकी छायामें विश्राम लें।

(सब वृक्षके नीचे बैठते हैं)

कण्व–(आप ही आप) श्रीमान् राजा दुष्यन्तके योग्य क्या संदेशा भेजना चाहिये (विचारनेलगे)

शकुन्तला–(सखियोंसे–हौले हौले)
हे सखि ! देख कमलिनीपत्रमें छिप जानेपर ही प्रिय चकवेके निहारे विना व्याकुल हुई यह चकवी विलाप करती है, मैंने बडा कठिन कार्य किया है।

अनसूया–सखि ! ऐसा मत कह।

दोहा–**यह वियोगकी बाड़ निशा, काटत विन प्रियसंग॥**
मेटत कछु दुख विरहको, पुनि फिर मिलन उमंग॥१५॥

कण्व–हे शार्ङ्गरव ! शकुन्तलाको आगे करके हमारी ओरसे राजा दुष्यन्तसे यों कहना।

शार्ङ्ग०–जो आज्ञा।

(राग जैजैवन्ती)

कण्व–**जानि हमे तपधनी नृपति भारी,**
अपनोहू कुल उच्च विचारी।
हुई प्रीति जो स्वयं दैववश,
इस कन्याकी ओर तुम्हारी।

ताहि सोचकर सब रानिन सम,
राखो बेटी यह हमारी ॥
बस कहनो यह अधिक बात याहि,
ह्वैहै भाग्य अधीन सुखारी ।
सो न उचित हम वधू बन्धुजन,
ताको मुखसे कहै उचारी ॥

शार्ङ्ग--आपका संदेशा मैंने भलीभाँति ग्रहण कर लिया ।

कण्व-बेटी ! अब तुझे भी कुछ शिक्षा दूँगा, यद्यपि हम वनवासी हैं तथापि लोकवृत्तान्त भलीभाँति जानते हैं ।

शार्ङ्ग-बुद्धिमानोंसे क्या छिपा है ?

कण्व-बेटी ! जब तू यहांसे जाकर पतिकुलमें प्राप्त हो तब--

(अरल)

गुरुजनकी सबभाँति करो सेवा मनलाई ।
सौतनसे तजि द्वेष सखीसम प्रीति बढ़ाई ॥
भर्ताके अपमान किये ते रोष न कीजो ।
कटुकवचनको त्याग नित्य आदर तेहि दीजो ॥
परिजनके प्रति सदा मिष्टवाणी उच्चारो ।
मैं महारानी भई गर्व यह मन मतिधारो ॥
"पतिको देवसमान सदा मनमाहिं विचारो ।
सबविधि सेवहु ताहि दोउकुल सुमति उधारो ॥
पीछे सोवहु नित सबहीसे पहले जागो ।
करि सब विधि सम्मान पती चरणन अनुरागो ॥"
वर्तत इमि कुलवधू श्रेष्ठ गृहिणी कहवावैं ।
चलें जो उलटी चाल दुहूंकुल दोष बढ़ावैं ॥
कहो गौतमी पुत्री हित यह शिक्षा कैसी ।
गौत०--कुलवधुओंके निमित कही चाहिये कहि तैसी ॥
पुत्री इसको सदा ध्यानमें राखो मनकर ।

कण्व--बेटी-आ मुझसे अरु निज सखियोंसे भेंट अंकभर ॥

शकुन्तला-हे तात ! क्या यहींसे प्रियंवदा और अनसूया मेरी सखी लौट जायँगी ?

कण्व-बेटी ! यह दोनों अभी क्वारी हैं इससे इनका वहां जाना उचित नहीं, गौतमी तेरे सङ्ग जायगी।

शकुन्तला--(पितासे मिलकर) अब मैं पिताकी गोदीसे न्यारी होकर मलयपर्वतसे उखाड़ी हुई चन्दनलताके समान देशान्तरमें कैसे प्राण धारण करूँगी ?

(राग काफी)

"पितुकी गोद बहुरि कब पैहौं।
जिन पाली पोषी अति हितसौं,
तिनको त्याग कौन विधि जैहौं ॥
पितुगृह परिजन, प्रियजन सखिजन,
छुटत सबै यह दुख केहि कैहौं।
तजत अकेली हाय ! पिता मोहि,
इकली केहिविधि धीर धरैहौं"

कण्व-बेटी ! ऐसी व्याकुल क्यों होती है ?

बेटी धीर मनमें धारि।
जाय घर यशवन्त पतिके होइ है प्रियनारि।
मिलै नहिं अवकाश जब गृहकाजसों सुकुमारि॥
दिशा पूरब जनत जिमि रवि सुवन मंगलकारि।
जनहिगी जब पुत्र ऐसो जगतको उजियारि ॥
तब विरहकी व्यथा हमरे भूलि जैहै सारि।
लहत सबही नारि यह दुख नेक मनहिं विचारि॥

(शकुन्तला पिताके पैरोंमें गिरती है)

कण्व-मेरे आशीर्वादसे तेरे मनोरथ पूरे होंगे।

शकुन्त०-(दोनों सखियोंके पास जाकर) आओ सखियो ! दोनों संग ही मुझसे मिल लो।

नौं--(भेंटकर) हे सखि ! यदि राजा तुझे न पहचाने, तो यह मुँदरी जिसपर उसका नाम खुदा है दिखा देना ।

कुन्त०--तुम्हारे इस सन्देहने तो मुझे कम्पित कर दिया ।

दोनों--डरनेकी बात नहीं, अधिक स्नेहमें अनिष्टका सन्देह होता है ।

शार्ङ्ग०--अब दिन पहरसे अधिक चढ़ गया, चलनेमें शीघ्रता करो ।

शकुन्तला--(आश्रमकी ओर मुखकर खड़ी होती है) हे पिता ! अब तपोवनका दर्शन फिर कब कराओगे ?

कण्व--बेटी सुन जब फिर आश्रम तू आवैगी ।
सागरपर्यंतभूमि सौत मानि पीयनेह,
सबविधि समरत्थ पुत्र धीर वीर पावैगी ।
रथको नहिं वेग रुकै जाकर जगमाहिं कहूं,
ताको कर व्याह वधू देख चित चावैगी ।
राजकाज सौंप ताहि पालन कुटुम्बभार,
शान्त हो पतीको फिर आश्रममें लावैगी ॥

गौतमी--बेटी! चलनेकी घरी बीती जाती है पिताको लौट जाने दे,मुनिराज ! अब लौटो यह तो बार बार ऐसे ही कहती रहैगी ।

कण्व--बेटी ! मेरे तपोऽनुष्ठानमें विघ्न पड़ता है ।

शकुन्त०--(फिर मिलकर) पिताजी ! तुम्हारा शरीर तपस्यासे पीडित है सो मेरे निमित्त बहुत उत्कंठित न होना ।

कण्व--(श्वास लेकर) (खम्माच)

मम दुख यह केहि भाँति नसैहै ।
पूजाहेतु कुटीके द्वारे,
बुए धान्य दृष्टि जब जैहै ।
तब नीवारवली अवलोकत,
जियवियोग दुख अति अधिकैहै ।
तब बिछुरनकी व्यथा बढै नित,
पुत्री हित पितु सुख कब पैहै ॥

अब जा तेरा मार्ग मंगलकारी हो।

(शकुन्तला साथियों समेत चलती है)

दोनों सखी(शकुन्तलाकी ओर देखकर)–(विहाग)

भई अब नैननिसों सखि दूरि।
लीनो वृक्ष दुराय सखीको,
नहिं दीसत पगधूरि।

कण्व–(श्वास लेकर) अनसूये गइ सखी तुम्हारी,
मेरी जीवनमूरि।
शोक त्याग मम पाछ पीछे,
आओ मनकरि कूरि॥

दोनों–पिता सखीके विना तपोवन,
रह्यो विरह भरिपूरि।
सूनो लगत चलैं हम कैसे,
चर अचर रहे विसूरि॥

कण्व–सत्य है प्रीतिमें ऐसा ही दीखता है (ध्यानकर चलते हुए) आज शकुंतलाको पतिके घर भेजकर मैं निश्चिन्त हुआ।

(चौपाई)

बेटी होत पराये घरकी।
चिन्ता लगी रही सम वरकी॥
सो अब तेहि पतिगेह पठाई।
मनमें इमि पाई निचिताई।
जिमि काहूकी देइ धरोहर।
होय विमल मन सब विधि सुखकर॥

(सब बाहर गये)

चौथा अंक समाप्त हुआ

अंक–५.

(स्थान राजभवन)

(दुष्यन्त राजा आसनपर स्थित है विदूषक सामने खड़ा है)

विदूषक–(कान लगाकर) हे मित्र! संगीतशालाकी ओर कान लगाओ, कैसा मनोहर स्वरोंसे गीत सुनाई देता है, मैं जानता हूं श्रीमती हंसपदिका रानी गानेका अभ्यास कर ररही हैं।

राजा–चुप रहो सुनने तो दो।

(नेपथ्यमें)

(सहाना)

भ्रमर तुम अभिनव मधुके मीत।
रस आमकी मृदुल मंजरी, तासों राखी रीत।
नित चुम्बन हित आवत तोहि ढिग, अधिक बढ़ाई प्रीत।
अब सरोजवश ताहि भुलायो, बहु दिन गये व्यतीत।
भ्रम्र तिहारी दशा देख यह, होत न जिय परतीत॥

राजा–अहा! कैसा प्रीति उपजानेवाला राग है।

विदू०–आप इन गीतोंका अर्थ भी समझे?

राजा–(मुसकाकर) हां समझा, रानी हंसपदिका पर मैं पहले आसक्त था, अब वसुमतीमें प्रेम है, इस कारण रानी मुझे उलाहना देरही है। मित्र माढव्य! हमारे वचनसे रानी हंसपदिकासे कहो कि, हम तुम्हारी चेतावनीको जानगये।

माढ०–जो श्रीमान् आज्ञा देते हैं (उठता है) हे मित्र! जिस प्रकार अप्सराके हाथसे तपस्वीका छुटकारा कठिन होता है ऐसे ही मेरी दशा होगी, वह सखियोंसे चोटी पकड़वाकर मुझे पिटवावेगी।

राजा–जा–चतुराईसे उसे समझा देना।

माढव्य–जाने मेरी क्या गति होगी? (गया)

दुष्यन्त-(आपही आप) यद्यपि मुझे किसी प्रेमीका वियोग नहीं है, तो भी गीतके सुनते ही अकस्मात् चित्तमें उत्कंठा हो आयी इसका क्या कारण है? अथवा।

(झंझोटी)

जियमें यह जान परत हमको सब कारन।
भली वस्तु देख कोइ अथवा सुन राग सरस,
सुखियन मन एक संग उत्कंठाकर धारन॥
पूर्वजन्मके स्नेह बन्धुनको संस्कार,
देत सुध दिवाय सबै प्रेमके पगारन॥

(व्याकुलतासे बैठता है)

(कंचुकी आता है)

कंचुकी-अहा! इस समयमें किस दशाको पहुंचा हूं?

(राग ईमन)

यह लाठी जो द्वारपालके,
काम काज हितकी धारन।
रनवासीको काम निकारे,
अब सब बीतचले कारन।
डगमग बूढ़े चरनोंको अब,
बनी सहारा सोई है।
हाय बुढ़ापेने अब आकर,
अक्किल सारी खोई है॥
"कहन चहत जो कहत बनै नहिं,
भूलिजात है कहत कहत।
छिनभर रहत न वृत्ति एकसी,
तनको मन नहिं धीर रहत।"
यह तो सांची महाराजके,
धर्मकाज सब करन परत।

पर धर्मासनसे वह उठकर,
अभी गये विश्राम करत।
तासे उचित नहीं अस कहिबो,
कण्वके चेला आये हैं ।
विघ्न पड़ै विश्राम स्वामिके,
अबही तो पौढ़ाये हैं ।
अथवा प्रजापालको बोझा,
जिन अपने शिरधारो है।
तिनको फिर विश्राम कहां यह,
मुनियन सत्य उचारो है।
एकहि बार जुते रविके रथ,
घोड़े नितप्राति चलते हैं।
करत नहीं विश्राम एक छिन,
पवन सदा गति करते हैं ।
शेषनाग नित धरत भूमिको,
कबहूं करत नहीं विश्राम ।
तिही भाँति राजनकी शोभा,
येही नित्यप्राति जनकाम ॥

अब मैं इस संदेशको भुगताता हूं (इधर उधर देखकर)
हाराज वे बैठे हैं ।

पुत्रसमान पाल परजाको,
जब राजा थकजाते हैं,
तब एकान्त स्वस्थके कारण,
इच्छा प्रकट जनाते हैं ।
जिमि सब यूथ सघन वनमाहीं,
जब गजराज देत पहुँचाय ।

रविके धूप तपनके कारण,
ढूँढत आप ठंढ कहुं जाय॥

(समीप जाकर)

महाराजकी जय हो। यह हिमालय पर्वतकी तराईके रहनेवाले कुछ तपस्वी कण्वमुनिका संदेशा लेकर स्त्रियोंसहित आये हैं, उनके निमित्त जो आज्ञा हो ?

राजा--(आदरसे) क्या कण्वका संदेशा लाये हैं ?

कंचु०--हां, महाराज !

राजा--तो हमारे वचनसे जाकर उपाध्याय सोमरातसे कहो कि, इन आश्रमवासियोंका वेदविधिसे सत्कार करके स्वयं प्रवेश करावे और मैंभी तब तक तपस्वियोंसे मिलने योग्य स्थानमें बैठता हूं।

कंचुकी--जो आज्ञा महाराजकी-- (गया)

राजा--(उठकर) वेत्रवति ! अग्निस्थानकी गैल बताओ।

प्रतिहारी--महाराज ! यह मार्ग है।

राजा--(इधर उधर फिरकर अधिकारका खेद निरूपण करके) सबही अपनी मनोकामना पाकर प्रसन्न हो जाते हैं, पर राजाकी कृतार्थता दुःखभरी होती है।

(राग ललित)

राज पाय मनकी अभिलाषा,
पूरी तो हो जाती है।
राज पाय पालन दुखदाई,
नित मनमें यह आती है।
हाथ हमारे रहे कौन विधि,
यह चिन्ता मनमें नित जागै।
श्रमहित शयन न होत खेदसे,
कबहूं नैन नींद नहिं लागे।
जिमि छत्रीको दण्ड लियेकर,
देत भार अरु धाम बचाई।

तिमि यह राज्यभार प्रदहू अरु,
दीसत है जनको सुखदाई ॥
(नेपथ्यमें)

दो वैतालिक-स्वामीकी जय हो-(ध्रुपद ईमन कल्यान)

चिरञ्जीवि महाराज, प्रजापाल करत काज,
आपको सुन्याव देख सबही सुख पावैं।
लोकहेत सहत दुःख, धम यह तुम्हारा नित्य,
अपने सुख हेत आप इच्छा बिसरावैं।
जैसे तरु और हेत, छाया सुख सकल देत,
अपने शिर धूप शीत लत दुख नशावैं।

दूसरा-दुष्टनके वश्य हेत, धारत निज हाथ दण्ड,
नाशत सब जनविवाद नाम तव सुनावैं।
रक्षा नित करत भूरि, क्लेश दुःख करत दूरि,
जेहि हित नृप जन्म धर्म सकलहू लखावैं।
औरहू केतिक नरेश, वैभवयुत हैं विशेष,
प्रजाहेत पाल धर्म तुम सर नाहिं आवैं ॥

राजा--इनके वचनोंने तो मेरे थके मनको फिर हरा कर दिया, (इधर उधर फिरता है.)

प्रतिहा०-हे महाराज ! अग्निशालाके बहिर्द्वारका कोठा भली प्रकारसे समार्जित किया हुआ सुशोभित है, वहींपर श्रीमहाराज चलें।

राजा-(सेवकोंके कंधोंपर सहारा देता हुआ राजा आरोहण करता है। प्रतिहारि ! किस निमित्त महर्षि कण्वने हमारे पास ऋषि भेजे हैं ?

(जैजैवन्ती)

केहि कारण ऋषि शिष्य पठाये।
तपसिन केहि धौं काजमाहिं कोइ,
विघ्न भयो तासों अकुलाये।
वा केहि दुष्ट आश्रम जन्तुन,

कष्ट दियो कहने सोइ आये।
अथवा मेरे अघके कारण,
आश्रम लता पुष्प मुरझाये।
यह शंका व्यापत मेरे मन,
थिर न रहत बहु धीर बँधाये॥

प्रति०--मैं तो यह विचारती हूँ कि यह तपस्वी आपके सुकर्मोंसे प्रसन्न हो अभिनन्दन करने आये हैं।

(मुनिजन शकुन्तलाको साथ लिये गौतमीसहित आते हैं और पुरोहित कंचुकी आगे होते हैं.)

कंचु०--महात्माओ! इस ओर आओ!

शार्ङ्गरव--हे शारद्वत!

(चौपाई)

महाभाग यह नृपति सुहायो।
जासु प्रताप दशहु दिशि छायो॥
निजमर्याद कबहुं नहिं त्यागत।
नीचहु वर्ण कुमार्ग न लागत॥
पै मैं नित एकान्त निवासी।
सदा इकेल रहन अभ्यासी॥
जनाकीर्ण यह है नृपस्थाना।
अग्निदीप्तगृह सम मनमाना॥

शारद्व०--मैं भी ऐसा ही जानता हूँ मेरी भी पुरमें प्रवेश करनेके समयसे ऐसी ही दशा हो रही है।

(दोहा)

सुखसंगी इन जननको, मैं देखत इहि भांति।
न्हायो तेल लगात जिमि, जिमि शुचि अशुचि मिलाति॥
जिमि जागत सोवत लखहि, बँधुवन जिमि निर्बंध।
तैसे मैं इनको लखहुँ, पड़े जगतके धंध॥

कुन्तला-(निमित्त देखकर) हा! मेरी दाहिनी आंख क्यों फड़कती है?

तमी-पुत्रि! दैव कुशल करेंगे, तेरे स्वामीके कुलदेवता अशकुनोंको मेट तुझे सुख देंगे (चलती है)

ोहित-(राजाको बताकर) हे हे तपस्वियो! यह वर्णाश्रमोंके रक्षक राजाधिराज पहले ही आसनसे उठकर तुम्हारी बाट देखते हैं, इन्हें देखो।

ाङ्गरव-हे महाब्राह्मण! यह तो बड़ाईके योग्य ही हैं, परन्तु हम तो इसमें निस्पृह हैं कारण कि-

हा-तरुवर फल लागे झुकत, जलयुत मेघ झुकाय।
सज्जन पाय समृद्धिको, झुकत मान बिसराय॥
परोपकारिजनको सदा, यहै स्वभाव लखाय।
यहिमें अचरज कौन अति, धर्मधुरन्धर राय॥

तिहारी--स्वामिन्! यह तपस्वी प्रसन्नमुख दीखते हैं, इससे जाना जाता है कि, इनका कोई शांतिवाला कार्य है।

जा(शकुन्तलाको देखकर-इनमें यह कोई स्त्री है)

हा-अञ्चलसे मुख ढांकि यह, को इनके सँग बाल।
पूरी सुघराई यदपि, लख न परत इहि काल॥
तदपि तपस्विनसे घिरी, यह लखाति अस तोय।
जीरन पातन मध्य जिमि, नव कोंपल कमनीय॥

तेहारी-महाराज! इनका वृतान्त जाननेकी तो मेरे मनमें भी है पर मेरी तर्कना काम नहीं करती, पर हां, यह स्त्री बहुत ही सुन्दर और देखने योग्य है।

जा-रहने दे, दूसरेकी स्त्रीको देखना न चाहिये।

कुन्तला-(अपने हृदयपर हाथ रखकर आप ही आप)

(विहाग)

अहो! मन धीरज नेक धरो।
कत धरकत कारण विन आति ही चाहत भाग भरो

सुधिकर आर्यपुत्रकी वह दिन जैसो प्रेम करो ।
कंप त्याग सोई हम प्रतिम चाहत दुःख टरो ।

पुरोहित--(समीप जाकर) महाराज ! इन तपस्वियोंका विधिपूर्वक आदर सत्कार हो चुका, अपने गुरुका जो यह संदेशा लाये हैं सो अब सुन लीजिये ।

राजा--(आदरसे) मैं सुननेको सावधान हूं ।

ऋषि--(हाथ उठाकर) महाराजकी जय हो ।

राजा--तुम सबको प्रणाम करता हूं ।

ऋषि--तुम्हारी मनइच्छा सिद्ध हो ।

राजा--मुनियोंके तपमें तो कोई विघ्न नहीं है ?

शार्ङ्गरव--(जैजैवन्ती)

जिनके रक्षक तुम राजा, तहां विघ्नदुःख केहि काजा ।
जहां भानुतेज प्रकाशै, तहां अन्धकार सब नाशै ।
राजा--तौ राजशब्द यह ज्ञानी, हम लियो यथारथ मानी ।
अब कहो लोक हितकारी, हैं मुनि प्रसन्न दुखहारी ।
शार्ङ्गरव--स्वाधीन कुशल ऋषिराई, रहते हैं सिद्धसहाई ।
उन पूछि अनामय राजा, यह कह्यो आपसे काजा ।
राजा--क्या आज्ञा हमें सुनाई, सो दीजे आप बताई ।
शार्ङ्गरव--यह कन्या शील सुहाई-गंधर्वरीति तुम पाई ।
हम प्रीतिभावसों जानो, अब बात यहै मनमानो ।
दुहिताकी और तुम्हारी, यह जोड़ी भली विचारी ।
गुण रूप माहिं तुम दोऊ, हो तुल्य कहत सब कोऊ ।
तुम पूजनीय सज्जनमें, यह मानत हैं हम मनमें ।
बेटी सत्क्रिया हमारी, है मूर्तिमती सुविचारी ।
नाहिं तुल्य मिलावत जोरी, विधिके शिर है यह खोरी ।
सो तुम दोउ योग्य मिलाई, निन्दा निज सकल मिटाई
एहि गर्भवतीको राजन, ले धर्म करहु सब साधन ॥

गौतमी--आर्य ! मैं भी कुछ कहनेकी इच्छा करती हूँ, पर मुझे अभी कहनेका अवसर नहीं मिला।

इन पूछे नहिं गुरुजन, निज विवाहके माहिं।
तुम पूछे नहिं बंधु जन, मिल बैठे इकठाहिं॥
"करो परस्पर बात अब,सुख भोगो सबभांति।
प्रीति परस्पर दोउनकी, मोहिं सबभांति लखाति"

शकुन्तला–(आप ही आप) देखूँ, अब स्वामी क्या कहते हैं।

राजा–यह क्या स्वांग है !

शकुन्त०–(आप ही आप) यह राजाका वचन तो अग्निरूप है।

शार्ङ्ग०–यह क्या आप तो भली प्रकार लोकाचार जाननेमें कुशल हैं।

दोहा--**रहत सुहागिनि जाय जो, अपने पितुके गेह।**
कैसिउ होय पतिव्रता, करत लोग सन्देह।
होय पियारी वा नहीं, रहै पियाके पास।
यह चाहत हैं बन्धुजन, यहिमें सकल सुपास।

राजा–क्या इस देवीसे मेरा पहले ब्याह हुआ है ?

शकुन्तला–(दुःखी होकर आप ही आप) हृदय ! जो तुझे डर था सो आगे आया।

शार्ङ्गरव–क्या अपने किये कार्यमें अरुचि होनेसे राजाको धर्मको त्यागना उचित है ?

राजा–आप यह असत्कल्पनाका प्रश्न कैसे करते हो ?

शार्ङ्गरव–ऐश्वर्यके मदवालोंमें यह विकार हुआ करते हैं कि, चित्त स्थिर नहीं रहता।

राजा–इस वचनसे तुमने मुझपर बड़ा आक्षेप किया है।

गौतमी–पुत्री ! अब एक मुहूर्तको लज्जा मत करे, ला मैं तेरा घूँघट खोल दूँ जिससे तेरा स्वामी तुझे पहचान ले। (घूँघट खोलती है)

राजा--(शकुन्तलाको देखकर आप ही आप)

(झझोटी)

बारबार दुविधा यहि मनमें ।
ब्याह भयो की नहीं हमारो, या बालासँग बनमें ।
ले न सकत नहिं सकत त्याग यहि, लखत न कोइ जतनमें ।
भोर ओसयुत कुन्द फूलको, जिमि अलि लखत सुमनमें ।
त्याग न सकत न लेन सकत रस, दशा भई इमि जनमें ।

(विचारता हुआ स्थित होता है)

प्रतिहा०--अहो ! महाराजकी धर्मपालकता ! नहीं तो ऐसी स्त्रीरत्नको देखकर कौन सोच विचार करता ?

शार्ङ्गरव--महाराज ! मौन क्यों साध रहे हो ?

राजा-हे तपस्वियो ! मैं बारम्बार स्मरण करता हूँ पर सुध नहीं आती कि इस भगवतीसे कब मेरा विवाह हुआ है ? फिर क्षेत्री[१] कहानेसे भय करनेवाला मैं इस गर्भवतीको किस प्रकार स्वीकार करूँ ?

शकुन्तला-(दुःखसे) हाय ! जो मेरे सँग ब्याहमें ही शंका है तो अब मेरी बहुत दिनकी आशा टूटी ।

(कलिंगड़ा)

"विपत्ति यह कैसी आय छई ।
बहुत दिननकी आशा मेरी सो सब टूट गई ।
वज्रसमान दुःख यह गाजो किमि हो शान्त दई ॥
जेहि मुख अमि समान नित वाणी तेहिते अनल जई ।
यह विपरीत लखत मैं जानो खोटो भाग हुई" ।

शार्ङ्गरव-ऐसा मत कहो ।

(राग ललित)

कहो न ऐसी बात नृपति तुम,
नेक विचार करो मनलाई ॥ (टेक)

---

१ जिस मनुष्यकी स्त्री दूसरेसे गर्भवती है उसे क्षेत्री कहते हैं ।

जिहि मुनिकन्याको तुम छलकर,
दूषित कियो धर्म बिसराई ।
जोहि मुनि बुरो न मान तुम्हारी,
मानी सबही भांति भलाई ।
चोरीवस्तु चोरको जिमि को,
सौंपत तिमि निजसुता मठाई ।
साह बनायो तुम्हैं तासुको,
मत अपमान करो नृपराई ॥

शारद्व०--शार्ङ्गरव ! अब तुम ठहरो, हे शकुन्तला ! हमको जो कुछ कहना था कह चुके और महाराजने जो कुछ कहा वह भी सुन लिया, अब तू ही कुछ प्रतीति करा जिससे महाराजको सुध आवे ।

शकुन्तला--(दुःखसे मनमें) जो अब वह प्रेम ही न रहा तो सुध दिलानेसे क्या है ? अब मैं लोकापवादसे कैसे बचूं यह चिन्ता है (प्रगट) आर्य-पुत्र ! (आधा कहकर रुक जाती है) जो ब्याहमें ही सन्देह हो तो यह शब्द अनुचित है ।

(नट)

तुहि न उचित यह पुरुकुलराई ।
सरलस्वभाव तपोवनमें मोहिं,
कहि कहि मीठे वचन भुलाई ।
प्रीति बढ़ाय करी परतिज्ञा,
अब काहे धारत निठुराई ।
"कहि कहि प्यारी निपट लड़ैती,
दोउ भुज भरि भरि कंठ लगाई ।
वाही मुखते लोककान तजि,
भाषत हो मोहि नारि पराई ॥"

राजा-(कानोंपर हाथ धरकर)

पापसे भगवान् बचावे।

मम कुल और मोहि तू देवी, काहे चहत कलंक लगाई॥
जो सरिता मर्याद त्याग निज, तट अरु तरुवर देत गिराई॥
वह अपनो ही जल मलीन कर, अपनी शोभा देत बहाई॥

शकु०--अच्छा, यदि यथार्थमें तुम मुझे परनारी समझते हो तो जिसपर तुम्हारा नाम खुदा है पतेके निमित्त वह तुम्हारे ही हाथकी मुँदरी देती हूं इससे तुम्हारी शंका मिट जायगी।

राजा--यह सबसे अच्छी बात है।

शकुन्तला--(अंगुली देखकर) हा ! धिक् ! मेरे हाथसे अँगूठी कहां गयी ?

(जैजैवन्ती)

अब भलिभांति विधाता रूठो।
हँसी भई सबभांति हाय हा !
आर्यपुत्र जानों मोहिं झूठो।
अब कित जाउँ करूं का मैया !
भई यथा भोजन हो जूठो।

(बड़ी व्याकुलतासे गौतमीकी ओर देखती है.)

गौतमी--बेटी ! तैंने शंक्रावतारके[1] समीप शचीतीर्थमें जल आचमन किया था, निश्चय ही अगूठी वहां गिरी होगी।

राजा--(हँसकर) स्त्रियोंकी तात्कालिक बुद्धि यही कहाती है।

शकुन्तला--यह तो विधाताने अपनी प्रभुता दिखायी पर अभी और भी पता दूँगी।

राजा--उसे भी सुनूंगा, जो कहोगी।

---

१ मालनी एक छोटीसी नदी बिजनौरके जिलेमें गंगाजीसे थोड़ी दूर पूरबको वहांसे दक्षिण ओर हस्तिनापूर १६ कोशके लगभग है, बीचमें गंगाजीके दाहिनो शक्रावतार तीर्थ है जिसे अब शुक्रताल कहते हैं।

(श्रीपट)

शकुन्त०-पिय कछु करहु मनमें चेत ।
एक दिन जब माधवीके लतामण्डप हेत ।
बैठकर तुम नलिनीदलमें पानिको जल लेत ॥

राजा--तब क्या हुआ ?

शकुन्तला-ता समय पालित हमारो बालमृग सुखदाय ।
नाम दीर्घ अपांग प्यारे निकट आयो धाय ॥
कही तुम अतिप्यारसे यह: तुही जल कर पान ।
पियो नहिं तुमसे महाप्रभु देशको नाहिं जान ॥
जब पियायो मैं पियो तब कही तुम अस बात ।
सब कोई निजसंगिजनसे हे प्रिया! पतियात ॥
एक वनके दोउ निवासी दोऊ जन सुखदान ।
भयी हमसों नहीं आगे मृगशिशू पहँचान ॥

राजा--इसी प्रकार निज प्रयोजन सिद्ध करनेवाली स्त्रियोंकी बनावटी बातोंसे कामियोंके मन खिंचजाते हैं ।

गौतमी--हे महाभाग! ऐसी बातें मत कहो । यह तपोवनमें पालीहुई कन्या छल छिद्र क्या जाने ?

राजा--हे वृद्धतापसी! सुनो ।

सहज स्वभाव नारि चतुराई ।
सबगुण आकर्षनके जानत, यद्यपि काहू नाहिं सिखाई ।
पशुपक्षिनकी नारि गुणवती, फिर मनुजनकी कौन चलाई ।
देखो कोयल अपने बालक, कागनसे पलवावत जाई ।
पालित होय मिलैं अपने कुल, यह देखी हम रीति सदाई ॥

शकुन्तला-(क्रोधसे)

(ललित)

हे अनार्य! तुम निजसम सबही, कुटिल हृदय कर जानो ।
तृणसे ढके कूप सम ऊपर, धर्मवेष तुम ठानो ॥

तुमसों छलिया कौन होय जग, सत्यवचन नहिं मानो।
अपनायी पुनि दोष लगायी, अब कहँ मोर ठिकानो॥

राजा-(आप ही आप)

तियको कोप बनावटको नहिं, यह मेरे मन आवै।
यहिते मन सन्देह रह्यो भर, कहुँ चित थिर नहिं पावै॥
जब मैं कहत ब्याह होनेकी, सुधि मोहिं नेक न आवै॥
कबहुं इकान्त प्रीतिकी बातें, भई न क्यों भरमावै।
यह सुन भौंह चढ़ाय क्रोध कर, लाल नैन कर लीन्हे।
भौं मरोर इमि मनहुं काम, धनुके युग खण्ड सु कीन्हे।

(प्रगट) हे भद्रे ! दुष्यन्तके चरित्र तो प्रसिद्ध हैं तो भी ब्याह विदित नहीं है।

शाकुन्त०-होंगे ! मैं तो स्वच्छन्दचारिणी कहलायी, जो मैंने मुखके मीठे पेटमें विषभरे इस पुरुवंशी राजाकी प्रीतिमें पड़कर अपना हाथ गहाया (अंचलसे मुख ढाककर रोने लगी)

शार्ङ्गरव-विना विचारे कामकी शीघ्रता इसी प्रकार जलाती है, कहा है किः-

(तिताला-ठुमरी)

बिन परखे करिये ब्याह नहीं, यामें भलि बात लखात नहीं।
अनजाने प्रीति जुरात जहां, है वैर सुप्रेम रहात नहीं॥

राजा-क्या तुम इसकी परतीति मान,
यह मुझपर दोष लगाते हो।

शार्ङ्गर०-(अवज्ञासे) क्या तुम न सुनी यह उलटी रीत।
जो सज्जनसँग सरसात नहीं।
छलको जिन नाम न जन्म लियो,
तेहि बात न मानो सत्य कभी।
जिन निजविद्या छल सीखी,
वे झूंठे कबहुं कहात नहीं॥

दुष्यन्त--हे सत्यवादी ! यह तो हमने जाना कि हमारी विद्या ऐसी है, पर यह तो कहो इससे छल करनेसे मुझे क्या मिलैगा।

शार्ङ्गरव--घोर विपत्ति ।

राजा--पुरुवंशी विपत्ति चाहते हैं इस बातकी किसीको श्रद्धा नहीं हो सकती है।

शारद्व०--हे शार्ङ्गरव, इस उत्तर प्रत्युत्तरसे क्या है ? गुरुका जो संदेशा था सो सुना दिया, चलो अब लौट चलो (राजासे)।

दोहा--यहै तुम्हारी कान्ता, तुम इसके भर्तार।
वशवर्तिनि चाहै तजो, चह कर अंगीकार ॥

आओ गौतमी ! आगे चलो । (दोनों मिश्र और गौतमी जाते हैं)।

शकु०--इन छलीने तो छोड़ दिया क्या तुम भी मुझे छोड़ जाओगे ?

(उनके पीछे चलती हैं)

गौतमी--(खड़ी होकर) पुत्र शार्ङ्गरव यह देखो ! करुणापूर्वक विलाप करती हुई शकुन्तला पीछे पीछे आती है। अब निरमोही पतिके छोड़ने पर मेरी अभागी पुत्री क्या करे ?

शार्ङ्गरव--(क्रोधपूर्वक शकुन्तलासे) हे भाग्यहीने ! क्या तू स्वच्छन्द-चारिणी होना चाहती है ?

(शकुन्तला भयसे काँपने लगी)

शार्ङ्गरव--हे शकुन्तला !

(चौपाई)

यदि तू है यथार्थमें ऐसी, महाराज भाषत हैं जैसी ॥
तो दूषित पितु घर कह कामा, यदि तू सत्यवादिनी वामा ।
तो पतिकी बनकर रह दासी, यहां रहन भल त्यागउदासी ।
पतिके गेह भली सेवकाई, यह सब लोकाचार भलाई ॥

अब तू यहीं ठहर, हम आश्रमको जाते हैं।

राजा--हे तपस्वियो ! अब इस भगवतीको क्यों वंचित करते हो ?

दोहा--चन्द खिलावत कुमुदनी, रविकर कमल प्रकाश ।
वंशी पुरुष परनारिसे, करत न प्रेमविकाश ॥

शार्ङ्गरव--जब कि, आप दूसरेका संग पाकर अपनी पहली वृत्तिको भूल गये तब अधर्मसे भय करनेकी क्या बात है ?

राजा--(पुरोहितसे) मैं तुमसे इस विषयकी भलाई बुरायी पूछता हूँ।

दोहा--भयो मूढ मैं वा यही, मिथ्या कहत बनाय।
कहो आप भलिभाँतिसे, जेहि विधि संशय जाय॥
तिय त्यागेकर होय अघ, यदि सांची यह नार।
नहिं परनारी परसको, पातक लगै अपार॥

पुरोहित--(विचार कर) अब तो यह कीजिये।

राजा--कृपा कर आप कर्तव्य कहो।

पुरोहित--जबतक इसके सन्तान न हो तबतक यह हमारे घरमें रहे, इसके कहनेका कारण यह है कि, बडे २ ज्योतिषी महात्माओंने कह रक्खा है कि, आपके चक्रवर्ती पुत्र होगा, यदि वह इस मुनिकन्याके चक्रवर्ती लक्षणवाला जन्मे तो आदरके साथ इसको रनिवासमें लेना, यदि ऐसा न हो तो इसका पिताके समीप जाना निश्चित ही है।

राजा--जो गुरुजनोंको भला लगे सो करो।

पुरोहित--(शकुन्तलासे) बेटी! आ, मेरे पीछे चली आ।

शकुन्तला--हे भगवती वसुधे! मुझे स्थान दे तो मैं समा जाऊं।

(रुदन करती हुई पुरोहितके पीछे पीछे तपस्वियों सहित जाती है, राजा शापवश भूला हुआ शकुन्तलाका ही ध्यान करता है,)

(नेपथ्यमें)

बड़ा आश्चर्य हुआ!

राजा--(सुनकर) क्या हुआ ?

पुरोहित--(आकर विस्मय पूर्वक) देव! बडी अद्भुत बात हुई।

राजा--क्या ?

पुरोहित--देव!

(जैजैवन्ती)

कण्वशिष्य जब गेह सिधाये।

तब वह बाल भाग निज निन्दत,
चली रुदन कर बांह उठाये ।

राजा-तब क्या हुआ ?

पुरोहित-तब अप्सरातीर्थके तट इक,
ज्योति लखी तियरूप सुहाये ।
ताहि उठाय गयी उड़ कित जनु,
जान न परी मोहभ्रम पाये ॥

(सब आश्चर्य करते हैं)

दुष्यन्त-भगवन् ! पहले ही हमको यह बात भास गयी थी, अब इसमें तर्क खोज वृथा है, जाओ घर विश्राम करो ।

पुरोहित-(देखकर) महाराजकी जय रहे (गया)

राजा-हे वेत्रवती ! इस समय मैं व्याकुल हो रहा हूँ, विश्रामस्थानका मार्ग बता।

प्रतीहारी-महाराज ! इधर आवें इधर आवें ।

(चलती है)

राजा-(सोचता हुआ)

दोहा-सुधि न व्याहसे निदरि तिय, कहिकहि वचन कराल ।
अतिपीडित हो हिय कहत, है वह सांची बाल ॥

(सब बाहर गये)

इति पांचवां अंक पूर्ण हुआ ।

छठे अंकका प्रवेशक।

(स्थान एक गली)

(दो प्यादे और राजाका साला कोतवाल एक बँधुएको लाते हैं।)

प्र०--सिपाही--(बँधुएको पीटता हुआ)

(अंग्रेजी धुन)

बतला तू सच गंवार, मत बात कर हजार।
कहांसे मिली अँगूठी, ये राजाकी नामदार॥

कुम्भिलक--(कांपता हुआ)

मुझपर करो दया, अपराध नहीं किया।
ऐसा नहीं हूं करते हो, मुझको जो मार मार।

प्र० प्यादा--क्या विप्र तू सुजान, राजासे पाय दान।
मुंदरीकी बात कह, नहीं करता हूं तीन चार।

कुम्भिलक--सुन लो तो पहले बात, धीमर है मेरी जात।
धोरेही शक्रतीर्थके, जानोजी घर हमार।

दूसरा प्या०--मुंदरीकी बात बोल, बकता क्यों गोलमोल।
क्या जात पात पूछते हैं, तेरी चोर जार।

कोतवाल--कहने दो बात सब, रोको न इसको अब।

दोनों--कहते हैं कोतवाल जो, तू करबे उस प्रकार।

कुम्भि०--तहँ जाल डार डार, मछरिनको मार मार।
उनहींको बेंचबाँचके, पालूं मैं घर दुआर।

कोतवाल--है जीविका भली।

कुम्भिल०--कहिये न ये अजी।
जिसका जो धर्म कुलका, नहिं इसमें कुछ विचार।
वह योग्य हो अयोग, निन्दाके नहीं जोग।
पशुवधको सब बखाने, बड़े निर्दयीको कार।

पै यज्ञमें अनेक, मारे हैं बलके हेत।
क्या विप्रवर्ग बीच. नहीं दयाका प्रचार ॥

कोतवाल-आगेका बोल हाल।

धीमर--हे दीनके दयाल !

एक रोहू मछली एक दिन, देखी थी पेट फार।
उसहीके पेट मांह, मुन्दरी मिली ये नाह।
तुम गह्यो बीचसे आय, बात दी बताय।
उसहीको बेचनेको मैं, आया था इस बजार।
अब मारो चाहे छोड़ो, जो हो धर्ममें तुम्हार।
इहि बीच धरो आय, दी बात सब बताय।
खाता है गोह मांस, आती है इसके वास।
कुछ पूछ पाछ और भी, जानुक करो सुधार।
राजाके पास जाय, सब भेद दे सुनाय।

दोनों-(बहुत अच्छा) चल बेखटके अब है कहां उबार।

(सब चलते हैं)

कोतवाल-सूचक नगरके द्वार, तुम ठहरो खबरदार।
मुंदरीका ब्योरा जबतलक, कह आऊं मैं पुकार ॥

दोनों--अच्छा, जाओ स्वामीको प्रसन्न करो।

(कोतवाल गया)

प्र०--प्यादा--हे जानुक ! कोतवालजीको बडी देर हुई।

द्वि०--प्यादा--राजाओंके निकट समयसे ही जाना होता है।

प्र०--प्यादा--(धीमरको देखकर) हे जानुक ! इस अपराधीके शिरपर माला रखनेको मेरे हाथोंमें खुजली होती है।

धीमर--विना अपराध मेरे प्राण लेनेकी क्यों इच्छा करते हो ?

दूसरा--(देखकर) यह देखो हमारे स्वामी हाथमें राजशासनका पत्र लिये आते हैं, हे धीमर ! अब या तो तुझे गृध्र खायँगे वा कुत्तोंका मुख देखेगा।

कोतवाल–हे सूचक! इस धीमरको छोड दो। अंगूठीका भेद खुल गया।

सूचक–जो आज्ञा।

दूसरा प्यादा–यह तो यमराजके घरसे लौट आया (बंधन खोलता है)

कुम्भिलक–(कोतवालको प्रणाम कर) स्वामी! कहिये; मेरी आजीविका कैसी है?

कोतवाल–अरे! महाराजने इस अँगूठीका मोल और कुछ पुरस्कार भी दिया है (द्रव्य देता है)

कुम्भि०–(हाथ जोडकर और द्रव्य लेकर) स्वामीने मुझपर बडी कृपा की।

सूचक–यह दया नहीं तो और क्या है? जो तुझे शूलीसे उतारकर हाथीके ऊपर बैठा दिया।

जानुक–स्वामी! पारितोषिकसे जाना जाता है कि वह अंगूठी बड़े मोलकी होगी।

कोतवाल–मेरे जान स्वामीने अंगूठीका रत्न तो बड़े मोलका नहीं माना पर उसके दर्शनमात्रसे ही राजाको किसी अपने बड़े प्रिय प्रीतमकी सुध आ गयी। गम्भीरस्वभाव होनेपर भी अंगूठीके देखते ही कुछ देरतक उदास रहे।

सूचक–तो तो तुमने स्वामीकी बड़ी सेवा की।

जानुक–यों कहो कि इस धीमरका बडा काम किया।

(धीमरकी ओर ईर्षाकी दृष्टिसे देखा)

धीमर–क्रोध मत करो, फूलमाला[1]के बदले अंगूठीका आधा मोल तुम्हें भी दूँगा

जानुक–तुझे ऐसा ही उचित है।

कोतवाल–अरे कुंभिलक! 'अब तो तू हमारा बडा प्रियमित्र हुआ' तो पहली प्रीतिका साक्षी मदिराको बनाना चाहिये, चलो कलारकी हाटमें चले (सब गये)

(इति प्रवेशकः)

---

1 प्राणदण्ड देनेके समय अपराधीके गलेमें फूलमाला पहरायी जाती है।

अंक–६.



(राजभवनकी फुलवाड़ी)

(विमानमें बैठी हुई सानुमती अप्सरा आकाशसे आती है.)

(रोला छन्द)

सानु०–अप्सरतीर्थ माहिं जबतक है स्नानसमय सज्जनको।
तबतक बारी बारी जानो पडै अप्सरागनको॥
सो इसकाजमाहिं तौ मैंने अब निचिंताई पाई।
अब वृत्तान्त राजऋषिको मैं चलकर देखूं जाई॥
अहै मेनका मेरी आली सबविधिसे गुणवारी।
उसके ही सम्बन्ध शकुन्तल मुझे प्राणते प्यारी॥
मुझे मेनका बेटीके हित नृपके नगर पठायो।

(चारों ओर देखकर)

यह वसन्तउत्सवके दिन क्यों नगर उदास लखायो॥
यद्यपि पूछे विना जान लूं गुप्त हेत परकासी।
आज्ञा मान सखीकी पर मैं लखिहौं भेद उदासी॥
इन उद्यान रखानेवालीके समीप अब जाई।
भेदहेतु मायाके बलसे बैठूं गात छिपाई॥

(विमानसे उतरकर बैठती है)

(आमकी मंजरीको देखती हुई एक चेरी आती है और दूसरी उसके पीछे.)

(चौपाई)

प्र०चेरी–आममंजरी सरस सुहाय।
हरित पीत कहुँ लाल लखाय।
है तुहि जीवनमूल वसन्त। है तुहि शोभा सकल कहन्त।
तेरा प्रथम दरश मैं पाय। विनवतहूं अति प्रेम बढ़ाय।
ऋतुको हूजे मंगलकारि। रतिपतिकी तू प्राण पियारि॥

द्वि०चेरी–हे कोकिले ! तू आप ही इकली क्या कह रही है ?

प्र०चेरी–हे मधुरिके ! आमकी कलीको देखकर कोकिला मत्त होती ही है ।

द्वि०चेरी–(प्रसन्नतासे समीप जाकर) क्या वसन्तऋतु आ गयी ।

प्र०चेरी–हे मधुरिके ! तेरा यह मदविभ्रमवाले गीत गानेका समय है ।

द्वि०चेरी–हे सखि ! तू मुझे सहारा देकर उचका दे तो मैं पांयके अग्रभागसे खड़ी होकर एक आमकी मंजरी ले लूं, इससे भगवान् कामदेवकी पूजा करूँगी ।

प्र०चेरी–जो मुझे पूजाके फलसे आधा दे तो सहारा दूँगी ।

दूसरी–हे अली ! जो तू यह न कहती तो क्या आधा फल न देती ? कारण कि मेरा तेरा तो एक प्राण दो देह हैं (सहेलीका सहारा लेकर मंजरी तोड़ती है) यद्यपि यह आमकी कली अभी खिली नहीं है, तो भी टूटनेके स्थानसे कैसी सुहावनी महक आ रही है (अंजली बनाय मंजरी भेटको लेकर)

(वसन्त)

हे आममंजरी रसनिधान,
रतिपतिको अरपति तोहिं निदान ।
जेहि अबहिं लियो कर धनुष बान,
तेहि पंचबानमें अधिक मान ।
पथिकन तियके जिय वेध हेतु,
तू अधिक बान बन मीनकेतु ॥

(मंजरी अर्पण करदी)

(कंचुकी आता है.)

कंचुकी–(रिस होकर)अरी बावलियो ! यह क्या करती हो ? महाराजने तो अबके वर्ष वसन्त–उत्सवका होना निषेध कर दिया है फिर तुम क्यों आमकी मंजरी तोड़ती हो ?

दोनों–(डरकर) प्रसन्न हो, हमने यह काम जानकर नहीं किया ।

कंचुकी–तुमने नहीं जाना कि वसन्तके तरुवरोंने तथा उनके आश्रित पक्षियोंने भी तो महाराजकी आज्ञा मानी है। देखो तो!

(राग बहार)

तुम देखत हो नहीं काहे अरी,
बहु दिनकी लगीं कली आमनकी।
नाहिं देत परागरही निकरी॥
कूरेको तरु कलियाय रहो,
विकसी नहिं तनहू मौलसिरी॥
गइ बीत शिशिर कबकी बगरी,
नहीं अजहूं कोकिल कूक भरी॥
शंका मोहिं आधा बान काढ़ पुनि,
धरत निषंग मनोज डरी॥

दोनों–इसमें क्या सन्देह है! यह राजर्षि ऐसा ही प्रतापवान् है।

अ०चेरी–हे महानुभाव! कुछ दिनोंसे हम महाराजके साले, मित्रावसुकी भेजी महारानीके चरणोंमें आयी हैं, हमें इस कुमुदवनके पालनका कर्म मिला है इस कारण विदेशी होनेसे हमने यह वृत्तान्त नहीं सुना।

कंचुकी–अब हुआ सो हुआ फिर ऐसा न करना।

दोनों--हे श्रेष्ठ! हमें इस बातके जाननेकी इच्छा है,जो यह हमारे जानने योग्य हो तो कहो,महाराजने वसन्तोत्सव क्यों वर्ज दिया है?

सानु०--(आप ही आप) मनुष्योंको तो सदा उत्सव भला लगता है, इसमें कोई बड़ा कारण होगा जो ऐसी आज्ञा दी गयी है।

कंचुकी–यह तो सब जान चुके हैं फिर इसको कहनेमें क्या है, क्या शकुन्तलाके त्यागकी बात तुम्हारे कानों तक नहीं आयी?

दोनों--हां, राजाके सालेके मुखसे अँगूठी मिलनेतककी बात हमने सुन ली है।

कंचु०-तो थोड़ा ही कहना पड़ेगा, सुनो, जब ही महाराजने अंगूठी देखी

तत्काल कह दिया मुझे सुध आगयी, शकुन्तलाका ब्याह मुझसे एकान्तमें हुआ था, मोहसे मैंने उसको त्यागा है, उसी दिनसे महाराज पछतावेमें पड़े हैं.

(बहार)

सुखद वस्तु नहिं कोइ सुहावै, मंत्रीवर्ग निकट नाहिं जावै ।
परे रहत सेजनकी पाटी, रातौं रात नींद नहिं आवै ।
जब रनवास जाय बतरावत, यदपि चतुरता करि गुहरावै ।
नाम भूलकर कहै शकुन्तला, फेर लजाय शीश महि नावै ।
जब जब रहत इकन्त नृपतिमणि, तब तब नैन नीर भरिलावै ।
कहैं कहा नृपको पछितावो, विरहबिथा अति ही तनु तावै ॥

सानु०–(आपही आप) यह बात तो मुझे प्यारी लगी ।

कंचुकी-इसी दुःखसे महाराजने वसन्तोत्सव वर्ज दिया है ।

दोनों–यह तो उचित ही था ।

(नेपथ्यमें)

इधर आइये इधर आइये महाराज !

कंचु०–(कान लगाकर) अरी ! महाराज इधर ही आते हैं, जाओ तुम अपना काम करो ।

दोनों-अच्छा (गयीं) (दुःखियोंकासा वेष किये प्रतिहारी और माढव्यके साथ दुष्यन्त आता है)

कंचुकी-(देखकर) यह सत्य है, तेजस्वी पुरुष सभी दशामें मनोहर लगते हैं, यद्यपि हमारे महाराज उदासीमें हैं तो भी इनका दर्शन कैसा मनोहर है ?

(खम्माच)

यद्यपि वाम हाथमें कंकन पहरे एक दुखारे हैं ।
शोभित हैं तथापि औरौ सब भूषण राउ उतारे हैं ।
तत्ती श्वासोंसे होठोंकी सूख गयी सब लाली हैं ।
नींद नहीं आवे सारी निशि नैन भये अरुणारे हैं ।
राजसाज सब दूर किये हैं विरहबिथासे दुबले हैं ।

तदपि तेजके कारण दैवी शोभा तनपर धारे हैं।
जैसे चढ़ा शानपर हीरा शोभायमान लखाता है।
तैसे तेजमान राजाजी लागत सबै पियारे हैं।

सानुमती--(राजाको देखकर) अनादर पानेसे भी शकुन्तला इसके वियोगमें व्यथित हो रही है, सो क्यों न हो, यह इसी योग्य है।

राजा--(ध्यानमें इधर उधर फिरकर)

(केदारा)

जब ढिग आयी प्राणपियारी।
चेतायो चेतो नहिं तू मन, दीन्ही सब विधि तुरत बिसारी।
अब चेत्यो सन्ताप सहन हित, मृगनैनीके ध्यान मझारी।

सानुमती--(आप ही) इसीसे उस तपस्विनीके बड़े भाग हैं।

माढव्य--(आप ही आप) इनपर शकुन्तलारूपी व्याधि फिर आ गयी, न जानिये अब इसका उपाय क्या होगा?

कंचुकी--(राजाके समीप जाकर) महाराजकी जय रहे, मैं भले प्रकार प्रमद्वनको देख आया, आप अपनी इच्छानुसार उसके विनोद स्थानोंमें विश्राम करें।

राजा--हे प्रतिहारी! तुम हमारे वचनसे जाकर मंत्रिश्रेष्ठ पिशुनसे कहो कि कि बहुत कालके जागनेसे हमें धर्म आसनपर बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही, इससे प्रजासम्बन्धी जो कार्य हो उसे पत्रपर लिखकर हमारे पास भेज दिया करें।

प्रतीहारी--जो आज्ञा (गया)

दुष्यत--वातायन! तुम भी अपने कामपर लगो।

कचुंकी--देवकी जो आज्ञा (गया)

विदूषक--यह स्थान तो आपने निर्मक्षिक[1] कर दिया, अब शीत और गरमी का निवारण करनेवाली मनोहर इस प्रमदाकुंजमें बैठकर जी बहलाओ।

राजा--हे मित्र! आपत्ति छिद्र देखती रहती है, यह कहावत सत्य है कारण कि--

१ अर्थात् यहां मक्खी भी नहीं रही--एकान्त।

(दरबारी कान्हरा)

कहौं कहा कही न हमसे जाय।
मुनिदुहिता सँग ब्याह भयो मन मन सुधि दी बिसराय।
अब सुधि करकर उन बातनकी जिया रह्यो अकुलाय ॥
मिटन न पायो सो भ्रम जबतक मदन पहूंचो आय।
धनुपर बाण मंजरीको धर ताकन लगो कुभाय ॥
मा०—ठहरो तनक कामको सबभय दैहौं अबहिं मिटाय।
मनसिजके बाणोंको लाठीसे मैं देहुँ गिराय ॥

(लाठी उठाकर आमकी मंजरी तोड़नेको खड़ा होता है)

राजा—(हँसकर) हां, मैंने तेरा ब्रह्मतेज देख लिया, बता तो मित्र ! अब कहां बैठकर प्यारीकी उनहारवाली लताओंको देखकर नेत्र शीतल करूं।

माढव्य—क्या स्वामीने चतुरिकाको आज्ञा नहीं दी है, कि हम यह समय माधवीमण्डपमें बितावेंगे, वहीं मेरे हाथकी लिखी हुई भगवती शकुन्तलाकी चित्रपटी लाना।

राजा--जो वह ऐसा मनोहर स्थान है तो उसीका मार्ग बता।

माढव्य—महाराज ! इस ओरसे आइये।

(दोनों चलते हैं, सानुमती पीछे २ जाती है)

माढव्य--जहां मणियोंसे जटित शिलाकी चौकी बिछी है, यही माधवी-कुंज है, यह ऐसी दीखती है मानो आदरके निमित्त फूलोंका उपहार देती है, चलो वहीं चलकर बैठिये।

(दोनों चलकर बैठ गये)

सानुम०—(आपही आप) मैं भी प्यारी सखीका चित्र इस लतामण्डपकी ओटमें बैठकर देखूँगी और फिर इसके प्रेमकी अधिकाई उससे जाकर कहूँगी।

(लताकी ओटमें बैठ गयी)

राजा-हे मित्र! मुझे अब शकुन्तलाके मिलनेके पूर्व वृत्तान्तकी सब सुधि आ गयी और मैंने तुझसे भी तो कहा था, परन्तु उसके अनादरके समय तू मेरे निकट न था और न कभी तैंने उसका नाम लिया सो क्या तू भी उसे मेरी ही भांति भूल गया था।

माढव्य-नहीं मैं नहीं भूला हूँ, परन्तु सब बात कहनेके पीछे आपने यह भी तो कहा था कि यह बात हमने निरी जी बहलानेको ही कही थी, यथार्थमें नहीं, मैंने भी अपनी मूढ बुद्धिसे वैसा ही मान लिया था होनहार प्रबल होता है।

सानु०-(आपही आप) यह ऐसे ही हैं।

राजा-(शोकसे) मित्र! मुझे दुःखसे छुटाओ।

माढ०-महाराज! यह आप क्या कहते हैं, आपमें यह शोभा नहीं देता, सत्पुरुष कभी शोकसे कातर नहीं होते, देखो वायुके प्रबल वेगसे भी पर्वत कम्पित नहीं होते।

राजा-(पहाड़ी धुन)

वह सुधि कर कर जिय अकुलाय।
जब प्यारीको त्याग दियो मैं दशा कहूं क्या हाय।
मैं नहिं तोहिं रख सकत गेह निज तब प्यारी बिलखाय।
चलनेलगी साथियनके सँग तब वे उठे रिसाय।
ऋषिकुमार गुरुसम जेहि मानत बोले क्रोध बढ़ाय।
चलन अभागी साथ हमारे वहीं ठहर मतिआय।
तेहिछिन आंसु भरि मोहिं देखत खड़ी रही दुख पाय।
मम कठोर हियमें विष शर सम अब कसकत सो आय।
वे जलभरे नैन दोउ रोते जियमें रहे समाय।
फल न मिलो प्यारी पछिताई मोसे नेह लगाय॥

सानु०-(आप ही आप) अपना स्वार्थ ऐसा प्रबल होता है, कि इसका दुःख भी मुझे अच्छा लगता है।

माढव्य--मेरे विचारमें तो यह आता है कि उसे कोई आकाशचारी देवता उठाकर ले गया।

दुष्य०--ऐसी पतिव्रताके स्पर्श करनेकी किसे सामर्थ्य है ? मैंने सुना है कि मेनकासे उसका जन्म है सो मेरे मनमें तो ऐसी भासती है कि उसीकी सखियें उसे उठा ले गयीं।

सानु०--सुधिका भूलना अचम्भेकी बात है न कि सुधिका आना।

माढव्य--हे मित्र ! जो ऐसा है तो वह शीघ्र मिलेगी।

राजा--तुमने यह कैसे जाना ?

माढव्य--यह कि माता पिता अपनी पुत्रीको बहुत कालतक पतिके वियोगमें दुःखी नहीं रहने देते।

राजा--(आसावरी राग)

मित्र कहां मम प्राण प्रियारी।
जब संयोग भयो प्यारी सँग,
सुपनो ही वा माया भारी।
अथवा फल मेरे पुण्यनको,
प्रगट मिटो पुनि कियो दुखारी।
अब वह सुख फिर मिलत न दीखत,
इच्छा पड़ी अथाह हमारी।
तेहि विन अब जीवन धिक मानत,
चहुँदिशि दीखपरै अँधियारी॥

माढव्य--ऐसा मत कहो, देखो अंगूठीही इसका दृष्टान्त है कि खोई हुई वस्तु फिर मिल सकती है, प्रारब्धसे अचिन्त्य समागम भी हो जाता है, दैव-इच्छा सदा बलवान् है।

राजा--(मुँदरीको देखकर) यह मुँदरी ऐसे स्थानसे गिरी है जहां फिर पहुँचना कठिन है इस कारण यह शोच करनेके योग्य है।

(पहाड़ी धुन)

शोचयोग अति यह मुँदरी है।
जहँसे छुटे कठिन ढिग पहुँचत, ऐसे करसे छूट परी है।
अथवा जानपरत इस फलसे, मम सम तुच्छ पुण्यनिदरी है।
अति मनहर नख अरुण उंगरी, पाकर गिरी अभाग भरी है॥

सानु०--(आपही आप) जो यह किसी औरके हाथ पड़ती तो अवश्य इसका खोटा भाग गिना जाता।

माढव्य--मित्र ! यह तो कहो यह मुँदरी किस प्रकार उसकी अंगुली-तक पहुँची।

सानु०--(आपही आप) मेरे मनमें भी यही सुननेकी इच्छा थी।

दुष्य०--सुनो, जब मैं तपोवनसे अपने नगरको आने लगा तब प्यारी नेत्रोंमें आंसू भरकर बोली आर्यपुत्र ! अब कब सुध लोगे ?

विदूषक--तब फिर।

(काफी)

राजा-तब मुँदरी तोहि कर पहराई।
बहुत भाँति समुझाय बुझायो,
चलत समय यह बात सुनाई।
नितप्रति गिनियो अक्षर याके,
अन्तिम अक्षर जादिन आई।
तब निश्चय मनमें यह करियो,
लै जैहै कोइ आज बुलाई।
हाय ! भयो निर्दयी अधिक मैं,
वह सुध बुध ही सकल भुलाई॥

सानु०(आप ही आप) मिलनेकी अवधि तो अच्छी रक्खी थी, पर दैवने बिगाड़ दी।

माढव्य--फिर यह धीवरसे काटी हुई रोहूके पेटमें कैसे पहुँची ?

राजा–जब प्रियाने शचीतीर्थसे आचमनको जल लिया तब हाथसे गंगामें गिर पड़ी।

माढव्य–सत्य है।

सानुमती–(आप ही आप) इसीसे तपस्विनी शकुन्तलाके साथ ब्याह-होनेमें अधर्मसे डरकर राजर्षिने सन्देह किया था, परन्तु मुँदरीके देखनेसे इतना अनुराग क्यों हुआ, यह आश्चर्य है।

राजा–इसीसे मैं इस मुँदरीको बुरा कहता हूँ।

माढव्य–(आप ही आप) इन्होंने तो उन्मत्तोंका मार्ग ग्रहण किया है।

(देवगिरी)

राजा–कोमल अँगुरिनपर तू पहुँची,
हे मुँदरी जब सुखसे जाय।
तिन्हैं त्याग जलमें क्यों पैठी,
कैसे काज बन्यो यह हाय।
अथवा तू अचेत है तुझको,
भल बुरेका क्या है ज्ञान।
मैंने चेतन होकर कैसे,
प्यारीको कीनो अपमान॥

माढव्य–(आपही आप) यह तो पड़े मुँदरीके ध्यान।
मैं क्यों देऊँ भूँखसे प्रान।

राजा–प्यारी तुहि निष्कारण त्यागो,
दया करो दरशन दो आन॥

स्त्री चित्र हाथमें लिये आयी)

चतुरिका--महाराज! यह महारानीका चित्र देखिये (चित्र दिखाती है)

माढव्य-- मित्र! यह चित्र बहुत विचित्र बना है, जो भाव जहां चाहिये वैसे बने हैं, इसके नीचें ऊंचे स्थानोंका मेरी दृष्टिको भ्रम होता है।

सानुमती-अहो इस राजर्षिकी चतुराई ! मुझे सखी चित्रमें ऐसी दीखती है जानो सामने ही खड़ी है ।

(खम्माच)

राजा-रीति चितेरोंकी है जो जो वस्तु चित्रके माहीं ।
आय यथारथ सके नहीं तेहि आन भाँति दरशाहीं ॥
याहीं भाँति चित्रमें मैंने लिखी प्रिया मनभाई ।
तदपि रूपकी छबि कुछ कुछ इन रेखोंमें झलकाई ॥

सानु०-(आपही आप) यह प्रेमके भरे वचन पछतावेके योग्य ही हैं तथा निरभिमानके भी योग्य हैं ।

माढव्य-मित्र ! इसमें तो तीन भगवती दीखती हैं,तीनों ही दर्शन योग्य हैं, इनमें श्रीमती शकुन्तला कौनसी है ?

सानु०-इसने उस भगवतीको नहीं देखा इस कारण इसके नेत्र निष्फल हैं ।

राजा-अच्छा, कहो तो मित्र ! तुम इनमें किसे शकुन्तला जानते हो ?

माढव्य-मैं जानता हूं कि यही शकुन्तला होगी जिसकी बेनी ढीली होकर बालोंसे फूल गिरते हैं, पसीनेकी बूँदें कपोलोंपर ढलक रही हैं, शरीर कुछ थकासा है, निराली भांति भुजा फैलाये इस सींचेहुए नयी कोंपलोंवाले आमके निकट खडी है, इधर उधरकी दोनों सखी होंगी ।

राजा-तू बड़ा चतुर है,इस चित्रमें यह मेरे सात्त्विक भावका चिह्न देखो ।

दोहा-लगी पसीजी आंगुरी, रेख मलीन दिखाय ।
आंसनफीको रँग कियो, गिरे कपोलन आय ॥

हे चतुरिके ! अभी इस विनोदस्थानका चित्र पूरा नहीं लिखा गया है,इससे जा चित्रनिर्माणकी सामग्री ले आ ।

चतुरि०-आर्य्य माढव्य ! जबतक मैं आऊ तुम चित्रपटी लिये रहो ।

राजा-मैं ही तबतक लिये रहूँगा (चित्र ले लिया)

(चतुरिका गयी)

(राग आसावरी)

राजा-हा प्यारी जब सन्मुख आई ।

तब कठोरता कीन्ह हिये अस,
सन्मुख सो नहिं बैठन पाई।
चित्रमाहिं लखि २ अब प्यारी।
आदर दे दे थकत न राई।
नदी प्रवाह उतरनेपर जिमि।
मृगतृष्णाको दौरत जाई।
सो गति आन भई यह मेरी।
अब कहा हाथरहे पछताई॥

माढव्य–(आप ही आप) महाराज तो नदी उतर मृगतृष्णामें पड़े हैं, (प्रगट) मित्र ! अब इसमें क्या लिखना शेष है।

सानु०–(आपही आप) मेरे जान तो राजा उन स्थानोंको भी लिखेंगे जो मेरी सखीको प्रिय थे।

राजा--सुनो।

(सुहाग)

अबहिं यह लिखनको है मीत।
नवी मालिनि वहै इहि थल सकल भाँति पुनीत॥
होयँ बैठे हंस जोड़े तासु रेती तीर।
हिमालय दुहुँओर शोभित खग मृगनकी भीर।
तहाँ बैठे हरिन सुखसों करत होहिं जुगाल।
और चाहत मित्र लिखनो एक वृक्ष विशाल॥
सूखते हों जासु शाखा मुनिजननके चीर।
तहां हरिनी लिखूं बैठी कृष्णमृगके तीर॥
सींगसे तेहिके रही हो वामनैन खुजाय।
चित्रमें यह सकल बातें लिखों देहुँ बनाय॥

माढव्य–(आप ही आप) मैं तो यह चाहता हूं कि इस चित्रपटीको यह लम्बी दाढ़ीवाले तपस्वियोंसे पूर्ण करदे।

राजा—मित्र ! शकुन्तलाका एक भूषण लिखनेकी इच्छा थी सो तो रह ही गया ।

माढव्य—कैसा ?

सानुमती—(आपही आप) जो बनवासी युवतियोंके शेखरके योग्य हो ।

(आसावरी)

राजा—कर्णाभूषण शेष रह्यो है ।
शिरसफूलको बनो मनोहर,
शशिकर सरिस नयो है ।
केशर जासु कपोलन ऊपर,
लटकत आय सुराज लह्यो है ॥
कमल नालकी उरपै माला,
लिखनी रही विचार कह्यो है ।
शरद चन्द्रकी कर सम कोमल,
सुन्दर रस जनहित निचयो है ॥

माढव्य—हे मित्र ! यह भगवती लाल कमलकी पंखरीके समान हाथसे अपने मुखको छिपाये चकितसी क्यों हो रही है (विचारपूर्वक देखकर) आहा ! यह दासीपुत्र फूलोंके रसका चोर भौंरा भगवतीके मुखपर घूमता है ।

राजा—इस ढीठ भौंरेको दूर करो ।

माढव्य—तुम्हें ही ढीठोंको दण्ड देनेका सामर्थ्य है, तुम्हीं इसे निवारण कर सकोगे ।

राजा—सत्य कहते हो, अरे फूलवाली लताके प्यारे पाहुने! तू यहां खेद उठा कर क्यों आया है ?

दोहा—भौंरी बैठी फूलपै, ताको रही निहारि ।
भूंखी प्यासी तो बिना, ले न सकत रसवारि ॥

सानु०—यह वर्जन तो बड़ी उत्तम रीतिका है ।

माढव्य—यह जात बड़ी ढीठ होती है, समझायेसे नहीं मानती ।

राजा--अरे ! मेरी आज्ञा नहीं मानता ? सुन,

दोहा--**नवपल्लव कोंपल सरिस, प्रियके अधर रसाल।**
तेहिते रस धीरे लियो, मैं संगमके काल॥
तनकोहू जो तू छुए, अधर अरे अज्ञान!।
कमलनालके उदर तोहिं, बन्द करहुँ इस आन॥

माढव्य--ऐसे कठिन दण्डसे क्यों न डरेगा ! (हँसकर आपही आप) यह तो उन्मत्त होगये हैं, मैं भी इनके संगसे ऐसी ही बातें कहने लगा।(प्रकट) हे सखा ! यह चित्र है।

राजा--कैसा चित्र ?

सानु०--इस समय तो मुझे भी सुध न रही कि, यह चित्र है, फिर राजाको क्या चेत रहेगा।

राजा--मित्र ! तैंने बुरा किया।

(पीलूका जिला)

मित्र ! तुम क्यों सुध मोहिं दिवाई।
मैं दरशनको लेत रह्यो सुख इकटक चित्त लगाई।
साक्षात ठाढ़ी हैं मानों मेरे सन्मुख आई॥
अब रह गई चित्रकी प्यारी कीजै कौन उपाई।

(आंसू गिरा दिये)

सानु०--(आपही आप) पूर्वापरका विरोधी विरहका मार्ग निराला है, इसे सब ओर दुःख ही दीखता है।

राजा--मित्र ! अब यह पलपलका दुःख कैसे सहूं ?

दोहा--**नितप्रति कीन्हें जागरन, छूटो स्वप्न मिलाप।**
देखन देत न चित्रको, आंसु आंखन ढाप॥

सानु०--(आपही आप) शकुन्तलाके तिरस्कारका दुःख तैंने सर्वथा धो दिया। (चतुरिका आयी)

चतुरिका-(आकर) महाराजकी जय हो, मैं रंगोंका डिब्बा लिये इधर आ रही थी।

राजा-तब क्या हुआ ?

(जैजैवन्ती)

चतुरि०-मिलीं मारगमें रानी वसुमतीजी,
वो डिबिया रंगकी सब वस्तु छीनी।
ये बोली मैं हीं दूंगी इसको जाकर।

माढव्य-तू बचआई भला कैसे यहां पर।

चतुरि०-महारानीका तबतक सुघर अंचल,
कँटीले वृक्षमें उरझा सुकोमल।
तरलिका ह्यां लगी उसको छुड़ाने,
मैं चटपट आगयी तुमको छुड़ाने॥

राजा-सखा! मानमें गर्बीली रानी वसुमती आती है, तू इस चित्रको छिपा रख।

माढव्य-यही कहो कि मुझे छिपाले (यह कह चित्रको लेकर उठा) जब श्रीमान् रनिवासरूप कालकूटसे छूटें तो मुझे मेघप्रतिच्छन्न भवनसे बुला ले।

(बड़े वेगसे गया)

सानुमती-(आपही आप) दूसरीमें आसक्तहृदय होकर भी राजा पहली प्रीतिका निर्वाह करता है, परन्तु विदित होता है कि, पहलेकी अपेक्षा अब इस रानीमें राजाका थोड़ा अनुराग है।

(हाथमें पत्र लिये प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहा०-महाराजकी जय हो।

राजा-प्रतिहारी! तैंने मार्गमें महारानी वसुमतीको तो नहीं देखा ?

प्रति०-हाँ स्वामिन्! मिली तो थी, पर मेरे हाथमें पत्र देखकर पीछे लौट गयी।

राजा-रानी समयको जानती है, मेरे काममें विघ्न करनेकी इच्छा नहीं करती।

प्रतिहारी–महाराज ! मंत्रीने यह विनय की है कि आज भंडारमें बहुत द्रव्य आनेके कारण उसकी गणनासे अवकाश न मिला, इस कारण नगरका केवल एक ही कार्य हुआ है, सो इस पत्रमें लिखा है, श्रीमान् देख लें।

राजा–ला, पत्रिका दिखा (प्रतिहारीने चिट्ठी दी)

राजा–(बाँचता है) समुद्रमें नाव लेजाकर व्यवहार करनेवाला धनमित्र नाम सेठ नौका डूबनेसे मृतक हो गया, उसके कोई सन्तान नहीं है, क्या उसका धन राजकोषमें लिया जाय ? (शोकसे) हाय ! अपुत्र होना बडे दुःखकी बात है परन्तु जिसके इतना धन था उसके स्त्री भी बहुत होंगी, इससे पहले यह जानना चाहिये कि, उन नारियोंमें कोई गर्भवती है कि, नहीं ?

प्रति०–हे देव ! सुना है कि अयोध्याके सेठकी बेटी जो उसकी स्त्री है उसके इन दिनों पुंसवनसंस्कार हुआ था।

राजा–जाओ, मंत्रीसे कह दो, गर्भका बालक पिताके धनका अधिकारी है।

प्रतिहा०–जो आज्ञा (जाता है)

राजा–ठहरो तो।

प्रतिहा०–(फिर लौटकर आया)

राजा–इससे क्या ? उसके सन्तान हो या न हो।

(राग प्रभाती)

नगर ढंढोरा मेरे वचनसे जाकर दीजे अबहिं फिराई।
पापीजनके बिना हमारी प्रजाके जो कुल समुदाई।
विधिवश होय वियोग बन्धुके ते अपने सब दुःख मिटाई।
उनकी ठौर मोहिं ते जानें कहदीजो सब भांति सुनाई॥

प्रतिहारी–जो आज्ञा यही ढंढोरा होजायगा।

(बाहर जाकर फिर आया)

प्रतिहारी०–योग्य समयकी बरसाके समान महाराजकी आज्ञाने नगरमें आनन्द कर दिया है।

दुष्यन्त–(गहरी श्वास लेकर) हा ! जिस कुलमें आगेको सन्तान

नहीं होती, मूलपुरुषके मृतक होते ही योहीं उसकी सम्पत्ति पराये घर चली जाती है, इसी प्रकार मेरे पीछे भी पुरुवंशकी राजलक्ष्मी अकालमें बोयी भमिके समान रह जायगी।

प्रतिहारी–ऐसा अमंगल कभी न हो।

राजा–धिक्कार है मुझे जो मैंने उपस्थित हुए सुखका तिरस्कार किया।

सानुम०–(आप ही आप) सखीको हृदयमें करके ही इसने यह अपनी निन्दा की है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

(देश)

राजा–मैंने प्यारी पत्नी त्यागी बिना विचार।
निजकुलकी कल्याणवर्द्धिनी, गर्भवती सुकुमार।
जैसे फलके समय कृषक कोउ, खेती तजत उदार॥

सानुम०–(आपही आप)
रहि है वंश अटूट तुम्हारो, सबविधि मंगलकार॥

चतुरिका–(प्रतिहारीसे)
हाय! सेठकी दुःखकथाने, दीनो कष्ट अपार॥
महाराजके चितविनोदहित,
करौ शीघ्र उपचार॥
धन प्रतिछन्न भवनसे जाकर,
माढव लाउ पुकार॥

प्रतिहा०–सत्य कही अब मैं जाती हूं,
लाऊं अभी गुहार। (बाहर गयी)

राजा–हा ! मेरे संशयमें निशिदिन, होंगे पितर दुखार॥
नृपपीछे विधिसहित पिण्ड तिल कौन देइहै वार।
निशि दिन अपने मनमें राखत, होंगे यही निर्धार॥
अब तो निज आंसू धोनेसे शेष रहे जल जोय।
सुतविहीनके तर्पणजलके पियत होयँगे सोय॥

(शोकसे मूर्च्छित हो गया)

चतुरि०-(आश्चर्यसे देखकर) महाराज ! सावधान हो।

सानुमती--(आप ही आप)

(राग खट)

हा धिक्! हा धिक्! महाराजकी,
शोचनीय है दशा अपारी।
जिमि दीपक सन्मुख पट कीन्हें,
दीखन लागत है अँधियारी।
मनम आवत है यह अबहीं,
मेट देहुँ नृपके दुख भारी।
पर मैं सुनी इन्द्रमाताकी,
कही सखीसे बात उचारी।
यज्ञभाग अभिलाषी सुरगण,
बेटी ऐसा करहिं सवारी।
थोड़े समय माहिं निजपतिकी,
ह्वै है सबविधि नारि पियारी।
याहि कारण उस शुभ अवसरकी,
चहिये परखन घड़ी सुखारी।
इतना करौं जाय निज सखिसे,
कहि सब धीरज देहुँ विचारी।

(उड़ गयी)

(नेपथ्यमें)

(लच्छासाखकी तीसरी चाल)

कोई मुझे बचाओ बड़ी आपदा मुझपर आयी है।

राजा-(चेत होकर और कान लगाकर)

माढव्यसा ये चिल्लाना, है कोइ ह्यां जलदी आना।

प्रतिहारी--(आकर संभ्रमसे)

रक्षा कीजे माढवकी स्वामी दुख अधिकाई है।

राजा–किसने अपमान किया है?

प्रतिहारी–एक प्रेतने पकड़ लिया है।

घनछन्नभवनके ऊपर रख देता न दिखाई है॥

राजा–ऐसा मत हो क्या मेरे भी घर भीतर,
रहते हैं भूतगण आकर।
अथवा प्रमादवश अपने जिन गति कर्म भुलाई है॥
फिर वह क्यों जानै ऐसे, प्रजामें कौन है कैसे॥

(नेपथ्यमें)

हे मित्र! दौड़ियो चलियो, काहे देर लगाई है॥

राजा–(सुनता हुआ और वेगगतिसे चलता हुआ)

(नेपथ्यमें)

डरना मत मित्र सयाने, क्यों नहिं इससे भय माने।
धरकंठ देहको ऐंठत, जैसे ईख पिराई है॥

राजा–(चारों ओर देखकर)

कोई धनुष हमारा लाओ,
मत इसमें बार लगावो।

यवनी–धनुष लिये आती है)

महाराज धनुष यह हस्तवारयुत धरो दुहाई है॥

(राजाने धनुष बाण लिया)

(नेपथ्यमें)

पकड़ा है तुझे अब ऐसे, धरता है सिंह मृग जैसे।
कंठरुधिरकी तेरे प्यास, मुझको अधिकाई है॥
अब कहां राजा दुष्यन्त, कर्ता है विपतका अन्त।
वह धनुष बाण धर तुझको, क्यों लेता न बचाई है॥

---

१ जो धनुषकी प्रत्यञ्चाकी फटकारसे भुजाको बचानेको पहुँचेपर धारण किया जाता है उस अङ्गको हस्तवार कहते हैं।

राजा-(क्रोधसे) रे शवभक्षी अन्यायी! क्या मुझे चिनोती लाई
रह खड़ा मृत्यु तेरी अब पापी धोरे आई है ।

(धनुष चढ़ाकर)

राजा--हे वेत्रवती ! सीढ़ियोंका मार्ग दिखलाओ ।

प्रति०--महाराज ! यह मार्ग है (सब शीघ्रतासे जाते हैं)

(ऊपर जाकर)

राजा-(चारो ओर देखकर) यहां तो कोई भी नहीं है ।

(नेपथ्यमें)

बचाओ महाराज ! बचाओ, मैं तो तुम्हें देखता हूँ तुम मुझे नहीं देखते, मैं तो बिलावसे पकड़े चूहेके समान अपने जीवनसे निराश हूं ।

राजा--हे तिरस्करिणी विद्याके अभिमानवाले ! मेरा अस्त्र तुमको देख लेगा, देख, अब मैं बाण चढाता हूं ।

तुझ पापीको मार जो, द्विजको लेहि उबारि ॥
जैसा हंसा दूधको, जलते लेत निकारि ॥

(धनुपपर अस्त्र चढ़ाया)

(माडव्यको छोड़कर मातलि आया)

(आसावरी)

मातलि--महाराज इन्द्रने इन बाणोंको असुर बताये हैं ।
उनपर यह छोड़ो बाण वचन सुरराज सुनाये हैं ।
मित्रोंके ऊपर नित ही सज्जन दया दिखावै हैं।
अपने हितकारीको सब विध हितकर अपनावै हैं ।

राजा-(अस्त्र उतारता हुआ) हे महेन्द्रसारथि मातलि ! तुम भले आये ।

माढव्य०--(आकर) हैं, जो मुझे बलिपशुके समान मारता था यह उसका सत्कार करते हैं ।

मातलि--(हँसकर) महाराज ! सुनिये जिस कारण इन्द्रने मुझे तुम्हारे समीप भेजा है ।

राजा--कहिये, मैं सुनता हूं ।

मातलि--कालनेमिके वंशमें एक दानवोंका समूह बड़ा दुर्जय हो रहा है

राजा--सत्य है ! यह मैंने पहले ही नारदजीसे सुन लिया है ।

मातलि--

(पूरियाछंद)

तव सखा इन्द्रके पाहीं, नहिं दानव जीते जांहीं ॥
तिन मारनहित महाराजा, हो अग्र करो सुरकाजा॥
जेहि सूर्य सकत नहिं टारी, शशि मेटत रात अँध्यारी॥
अब अस्त्र शस्त्र प्रभु बांधो, रथ चढ़ जयकारज साधो ॥

दुष्यन्त--देवेन्द्रने सत्कार देकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया, पर यह तो कहो, तुमने माढव्यपर ऐसा अत्याचार क्यों किया ?

मातलि--यह भी कहता हूँ, मैंने किसी निमित्तसे आपके मनमें अधिक सन्तापके कारण उदासी देखी इससे क्रोध दिलवानेके निमित्त यह कार्य किया ।

जौलों नहिं काठ हिलाई, तौलों न अगिन धुधकाई ॥
जबतक न सर्प खिझियावै, तबतक नहिं फना उठावै ॥
तैसेहि क्षोभ बिन आये, जन निजमहिमा नहिं पाये ॥
इहिकारण मित्र सतायो, तुम्हरे मन रोष बढ़ायो ॥

राजा-(हौले माढव्यसे) हे मित्र ! सुरराजकी आज्ञा उलंघन करनेके योग्य नहीं है इससे यह बात समझाकर हमारी ओरसे पिशुन मंत्रीसे कहो ।

दोहा-तबलों निजमतिसों करहु, सकल प्रजा प्रतिपाल ।
और काज मेरो लगो, जबलौं चाप विशाल ॥

माढव्य-जो आज्ञा (गया)

मातलि-महाराज ! रथपर चढो ।

(दुष्यन्त रथपर चढता है)

(सब बाहर गये)

छठा अंक समाप्त हुआ ।

अंक-७

(राजा दुष्यन्त और मातलि रथपर बैठे आकाशसे उतरते हैं)

दुष्यन्त--हे मातले ! इन्द्रकी आज्ञा पालन करके भी मैं अपनेको इतने बड़े सत्कारके योग्य नहीं समझता हूँ, जितना देवराजने मेरा सत्कार किया है ।

मातलि--(हँसकर) महाराज ! दोनोंको ही यह संकोच मानता हूं ।

दोहा--हे नृप तुमने इन्द्रको, कियो बड़ो उपकार ।
मानत हो तेहिं तुच्छकर, देख इन्द्र--सत्कार ॥
लखि तुम्हरी सो वीरता, सोउ चकित हियमाहिं ।
यदपि कियो सम्मान बहु, तदपि गिन्यो कछु नाहिं ॥

राजा--ऐसा मत कहो, इन्द्रने बिदा करते समय मेरा ऐसा आदर किया कि जितनेकी मुझे आशा न थी, देवताओंके देखते २ मुझे अपने आसनपर बैठनेको आधा स्थान दिया ।

(चौपाई)

जाकी आश जयन्त लगाये । ठाढ़ो रह्यो पास सकुचाये ॥
हरिचन्दनसे चर्चित जोई । पारिजातकी माला सोई ॥
सुअन ओर लखि हरि मुसकाई । हिये उतार मोहिं पहिराई ॥
यहितें अधिक कौन सत्कारा । देवराज जो कीन्ह हमारा ॥

मातलि--महाराज ! देवताओंसे आप किस किस सत्कारके योग्य नहीं हो ।

दोहा--सुरपुरके द्रोही किये, कण्टक दूर नृपाल ।
अब तुम्हरे शर पूर्वमें, नरहरि नखन कराल ॥

राजा--मुझे इस यशकी प्राप्ति देवराजके प्रभावसे ही हुई है ।

दोहा--आज्ञाकारिन हाथसों, बनत बड़ो जब काज ।
तौ महिमा सो स्वामिकी, समुझि परत सब साज ॥

अरुण सकत नहिं दूरिकर, रजनीको अँधियार ।
यदि न देत निजसामुहे, आसन सूर्य उदार ॥

मातलि—सत्य है (कुछ दूर चलकर) हे महाराज ! इस ओर तनक दृष्टि कर स्वर्गतक पहुँची हुई अपने यशकी महिमाको देखो ।

दोहा—अंगराग सुरतियनतैं, रंग बच्यो कछु जोय ।
तासों सुरगण लिखत हैं, प्रभुचारित्र तव सोय ॥
पत्तनपर सुरवृक्षके, मधुरे छन्द बनाय ।
लिख लिख राखत प्रेमसों, लखहु नरेश सुभाय ॥

राजा—हे मातलि ! दानवोंके मारनेके उत्साहमें प्रथम दिन इस ओरसे गमन करते हुए हमने स्वर्गमार्ग भलीभांतिसे नहीं देखा था, कहो तो इस समय हम वायुके किस मार्गमें चलते हैं ।

(जैजैवन्ती)

मातलि--महाराज यह मार्ग वही है ।
बहत जहां नभगंग सुहावन,
ऋषिमंडल गति वर्त्त रही है ।
परिवह पवन पंथ यह पावन,
शक्तियुक्त जेहि ज्योति गही है ॥
विक्रमरूप ईशके दूजे,
पगसे पावन ख्याति लही है ।
निज रश्मिनसे सबहि घुमावत,
ज्योतिर्गणको बात सही है[1] ॥

---

१ पुराणोंके मतसे आकाशके विभागमें सात पवन चलते हैं । भूलोकका विस्तार सूर्य तक है। इसमें आवह पवन चलता है। वही अन्तरिक्षमें बहकर मेघ, बिजली और उल्कापातको प्रकट कर चलता है।शेष छः मार्गमें हैं। पहले स्वर्गमें प्रवह सूर्यको चलाता है, संवह चन्द्रमाको घुमाता है, उद्वह नक्षत्रोंको घुमाता है,सुवह सातों ग्रहोंको चलाता, विवह सप्तर्षि और स्वर्गंगाको धारणकर चलाता है और परिवह ध्रुवको धारण किये है ।

राजा--हे मातलि ! इसीसे मेरा आत्मा भीतर बाहरकी इंद्रियों सहित प्रसन्नताको प्राप्त हुआ है (पहियोंको देखकर) अब हम स्वर्गमें मेघोंके मार्गमें उतर आये।

मातलि--यह महाराजने कैसे जाना ?

(राग झंझोटी)

राजा--देखो यह प्रत्यक्ष लखायी।
अरनमार्गसे निकासि निकासि यह,
चातक पक्षी रहे उड़ायी।
चमकत अंग इन्द्र घोड़नके,
विद्युतसे देखहु मन लायी।
भीजरहे सब रथके पहिये,
कहेदेत जनु हमें बुझायी
जलसे भरे मेघ पथमाहीं,
चलो जात यह रथ सुखदायी।

मातलि--अभी महाराज क्षणभरमें अपने राज्यकी भूमिमें पहुँचते हैं।

राजा--(नीचेको देखकर) वेगसे उतरनेमें मनुष्यलोक आश्चर्य सा दीखता है।

(जैजैवन्ती-प्रभाती)

यह शोभित नरलोक मनोहर ऊपरसे इमि देत दिखायी।
शैलशिखर यह लगत उठतसे नीचे भूमिहि खसत लखायी।
पातड़केसे रहे रूखजे तिनके कंध लगत निकसायी।
रेखामात्र लखात नदी जे ते अब दीखत ह अधिकायी।
भूमण्डल इमि निकट हमारे आय रह्यो देखहु मन लायी।
मानो केहु वीरको फेंको आवत है हमरे सनुहायी॥

मातलि--आपने भला देखा (भूमिकी ओर देखकर) अहो ! भूमि कैसी मनोहर दीखती है।

राजा--हे मातलि ! कहो तो पूर्व और पश्चिम सागरके बीच यह कौनसा पर्वत है जिसमें संध्याके मेघसे अर्गलाके समान सुनहरी धारा निकलती दीखती है।

मातलि--यह किन्नरोंका हेमकूट नाम पर्वत तपस्याका सिद्धक्षेत्र है।

दोहा--ब्रह्मा पौत्र मरीचिसुत, सुरासुरनके तात ॥
पत्नीसहित प्रजापती, तपत यहां सुख पात ॥

राजा--तो कल्याण प्राप्त करनेके निमित्त यह समय न चूकना चाहिये, ऋषिराजको प्रदक्षिणा करके चलना चाहिये।

मातलि--यह विचार बहुत श्रेष्ठ है

(दोनों उतरते हैं)

राजा--(आश्चर्यसे)

(चौपाई)

पहियन शब्द न परचो सुनायी।उठी धूरि नहिं परी लखायी।
उतरन रथ नेकहु नहिं जानो।अद्भुत रथप्रभाव हम मानो॥

मातलि--महाराज ! आपके और इन्द्रके रथमें इतना ही अन्तर है।

राजा--हे मातलि ! कश्यपजीका आश्रम कहां है ?

मातलि--(हाथसे दिखाकर)

(राग खट)

जँह वह अचल ठूँठ सम मुनि इक,रविसम्मुख लौ रहो लगायी।
चढ़ि आई आधेतन बांबी, सर्पकेंचुली हिय लपटायी॥
सूखी लतापरी गलमाहीं, पीडा करत मनहुँ अधिकायी।
शीशजटामें बनपक्षिनने, अपने लीन्हें नीड बनायी॥
वही आश्रम कश्यपजीको, जो सुर नर मुनिके सुखदायी॥

राजा--ऐसे कठिन तप करनेवालेको प्रणाम है।

मातलि--(घोडोंकी रास खींचकर) हे महाराज ! अब हम अदितिके सींचे हुए मन्दार वृक्षोंसे शोभित प्रजापतिके आश्रममें आ गये हैं।

राजा–यह स्थान तो स्वर्गसे भी अधिक शांतिदायक है, इस समय तो मैं भी मानो अमृतकुण्डमें स्नान कर रहा हूं।

मातलि–(रथको रोककर) महाराज ! अब उतरें।

राजा–(उतरकर) हे मातलि ! तुम रथको छोड़कर कैसे चलोगे ?

मातलि-इसका मैंने यत्न कर दिया है, यह यहीं खड़ा रहेगा, मैं भी उतरता हूं (उतरकर) महाराज ! इस ओरसे आइये (घूमकर) यह महर्षियोंकी तपोवनभूमियें हैं, महाराज इनका दर्शन करें।

राजा–मैं आश्चर्यसे देखता हूँ।

(दोहा)

करत और मुनितप अधिक, जेहिं थल पावन आस ॥
इन्द्रियसुख तज जपत तहँ, यह ऋषि मुनिकर वास ॥
कल्पवृक्षवनकी पवन, पीकर राखत प्रान ॥
अवसर भलो मुनीनको, सब विधि मन सुखदान ॥
कनक कमल रजसे सुभग, पीत सलिल सुखदाय ।
धर्मक्रिया अभिषेक हित, जँह नित मिलत सुहाय ॥
रत्नशिलापर बैठकर, साधत मुनि जन ध्यान ॥
यहां अप्सरन निकट हू, इन्द्रियवशी महान ॥
तहां तपत ह्यां मुनि सकल, हरिसे ध्यान लगाय ॥
अहो ! धन्य मैं धन्य अति, इनके दर्शन पाय ॥

मातलि–सत्पुरुषोंकी अभिलाषा सदा उन्नत रहती है (इधर उधर घूमकर आकाशकी ओर) हे वृद्धशाकल्य ! कहो भगवान् कश्यपजी इस समय क्या कर रहे हैं ?–क्या कहते हो, कि दक्षसुताने जो पतिव्रतधर्म पूछा था वह उनको और ऋषिपत्नियोंको सुना रहे हैं।

राजा–(कान लगाकर) मुनियोंके समीप अवसरसे जाना उचित है।

मातलि–(राजाकी ओर देखकर) महाराज ! तबतक इस अशोक वृक्षकी छायामें ठहरें, जबतक मैं समय देखकर इन्द्रके पितासे तुम्हारे आनेका संदेशा कहूँ।

राजा–जैसा तुम्हें भला लगे ।
मातलि–महाराज ! मैं जाकर कार्य करता हूँ ।
राजा–(शकुन देखकर)

(परज)

काहे फरकत बाँह वृथाहीं ।
प्यारीरूप मनोरथ मेरो, ताकी आश रही कछु नाहीं ॥
जब सम्मुख आये कोइ सुखको, करे निरादर दुख इमिपाहीं ॥

(नेपथ्यमें)

अरे ! चपलता मत करे, क्यों अपनी बान नहीं छोड़ता ?

राजा–(कानपर लगाकर) यह स्थान तो विनयका है, यहां चपलता करनेका किसको निषेध हो रहा है (शब्दकी ओर देखकर आश्चर्यसे) अहा ! यह बड़ा पराक्रमी किसका बालक है जिसे दो तपस्विनी रोक रही हैं ।

(चौपाई)

आधो पियो मात थन जाने, सिंहनिसुतको मनहिं न माने ॥
गहि कर केश घसीटत ताही, क्रीडाहित को बालक आही ॥

(सिंहके बच्चेको घसीटता एक बालक आया और दो तपस्विनी उसे बरजती हुई आयीं)

बालक–अरे सिंह ! तू अपना मुख खोल, मैं तेरे दांत गिनूंगा ।

पहली तपस्विनी--

(अंग्रेजी बालशाकी धुन)

कही मान मेरी हे लाल, तज यह चंचलताकी चाल ।
पशू सतावत क्यों अविनीत, हम बालकसी राखैं प्रीत ।
हाय बढ़ै साहस नित तेरा, बड़ी डिठाईने तोहिं घेरा ।
इसीसे तो ह्यांके मुनि जन, तुझे कहैं हैं सर्वदमन ।
मत इसके मुखमें कर डाल, तज यह चंचलताकी चाल ॥

राजा–(आपही आप)

इस बालकके लख शुभ गात,
औरससुत सम नेह लखात ।

सो कछु कारण परत न जान,
अथवा मैं हूं विन सन्तान।
तासों उपजत नेह शरीर,
द्वि० तपस्वी--तजै न जो मृगशिशुको वीर।
दौड़ेगी सिंहिन तत्काल। तज यह० ॥
बालक-(मुसकाकर) सत्य कहो हो वचन सुघर,
मुझे सिंहिनीका क्या डर।
(मुंह चिढ़ाता है)
राजा-यह तेजस्वीकी सन्तान,
दीखत बालक वीर महान।
ठाढ़ो ऐसे परत लखाय,
जलती अगिनि काठ जिमि चाय।
हरि हर इसपर रहैं कृपालु। तज यह० ॥
प्र० तपस्वि०-प्यारे छोड़ सिंहशिशु नेक,
तुझे खिलौना दूंगी एक।
बालक-अच्छा लाओ खिलोना अब-(हाथ फैलाता है)
राजा-इस बालकके लक्षण सब।
चक्रवर्तिसे परत लखाय, अद्भुतता कछु कही न जाय।
है अपूर्व रेखनको जाल। तज यह० ॥
जबहिं पसारयो यानै हाथ, जालगुथी अँगुरी इक साथ।
खिले कमलसम परीदिखाय; प्रातअरुणकछु दियो खिलाय।
पृथक् भई नहिं पखुरी जास, ऐसी शोभा करत प्रकाश।
दोऊ बांहैं बनी बिशाल। तज यह० ॥

दूसरी-हे सुव्रता! यह बालक बातोंसे न मानेगा, जाओ, मेरी कुटीसे ऋषि-कुमार मार्कण्डेयके खेलनेका एक मृत्तिकाका चित्रित मोर धरा है उसे ले आओ।

प्र० तप० मैं अभी लिये आती हूँ, (गयी)

बालक--तबतक मैं इसी सिंहके बच्चेसे खेल करूँगा ।

(यह कहकर तापसीकी ओर देखकर हँसता है)

राजा-(आपही आप) इसके खिलानेको मेरा जी कैसा करता है ?

(राग कलिंगड़ा)

मोद देत बालनके खेलन,
खिलखिलात जब कुन्दकली सम,
विकसत दन्तपंक्ति अतिपावन ।
विना बात हँस वचन तोतरे,
बोलत डोलत इत उत छिन छिन ।
धाय धाय कर परत गोदमें,
प्यारी बातैं लगत सबहि मन ।
अहो धन्य ! वे मात पिता अति,
जो इस बालकको करें लालन ।
गोद उठाय बालके तनुकी,
धूरिनसे मलीन कर निजतन ॥

द्वि० तपस्वि०--अच्छा, यह मेरी बातपर तो कान नहीं धरता (इधर उधर देखकर) ऋषिकुमारोंमेंसे यहां कोई है ? (राजाको देखकर) हे महानुभाव ! तुमहीं यहां आओ, इस बली बालकके हाथसे कृपा कर सिंहके बच्चेको छुड़ाओ, यह ऐसा इसमें मग्न हो रहा है कि इस बालमृगेन्द्रका छुड़ाना कठिन हो रहा है ।

राजा-(निकट जाकर और हँसकर) हे महर्षिपुत्र !

(राग खट)

आश्रमके विरुद्ध यह तुमने क्यों सीखे आचरण दुलारे ।
पशुरक्षा है धर्म तपस्विन काहे पुरुषन वचन बिसारे ।
जैसे बालसर्प चन्दन तरु दूषित करत न ज्ञान सम्हारे ।
तैसे तुमने कियो तपोवन त्यागो यह अनरीति पियारे ॥

द्वि० तपस्वि०-हे महाभाग ! यह ऋषिकुमार नहीं है ।

राजा–सत्य है, यह तो इसका आकार और चेष्टा ही कहे देती है। परन्तु तपोवनमें रहनेके कारण मैंने इसको ऋषिकुमार जाना था, (मनकी लालसाके अनुसार बालकका हाथ हाथमें लेकर आपही आप)

(राग देश)

अहा ! जनु कोहि कुल अकुर यह बालक।
जाके छुए मोहिं सुख ऐसो,
तेहि सुख कैसो जो एहि बालक।
निश्चय मात पिता बड़भागी,
जिनके अंग भयो खलशालक॥

तपस्वि०–(दोनोंकी ओर देखकर) बड़े आश्चर्यकी बात है।

राजा०–तुमको क्या आश्चर्य हुआ ?

तपस्वि०–इस बालककी और तुम्हारी उनहार बहुत मिलती है, इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है कि तुम्हें विना जाने भी इसने तुम्हारी बात मान ली।

राजा–(बालकको खिलाता हुआ) यदि यह ऋषिकुमार नहीं तो किसके वंशका है ?

तापसी–यह पुरुवंशी है।

राजा–(आपही आप) यह हमारे वंशका किस प्रकार है और इस भगवतीने इसीसे मेरी इसकी उनहार मिलती बतायी है। हां, पुरुबंशियोंमें यह रीति तो अवश्य है कि–

(चौपाई)

प्रथम भूमिपालनके कारन, करत गृहस्थआश्रम धारन।
तहँ सबविधि कर भोग विलासा, पाछे वनतरुतरकर वासा।
तहँ इन्द्रियसंयम कर भारी, जपहिं निरन्तर ब्रह्म विचारी।

(प्रगट)

पर यह थल ऐसो है नाहीं, बलसे नर आसकत न ह्यांहीं।

दूसरी त०–यह तुमने सत्य कहा, एक अप्सराकी पुत्री होनेके कारण इसकी माताने देवताओंके गुरुके तपोवनमें इस बालकको जन्मा है।

राजा--(आपही आप) अहो ! यह दूसरी बात आशाकी प्रगट करनेवाली हुई (प्रगट) तो वह भाग्यवान् इसकी माता किस राजर्षिकी स्त्री है ?

द्वि० तप०--जिसने अपनी धर्मपत्नीको विना अपराध त्याग दिया है उसका नाम कौन लेगा ?

राजा--(आपही आप) यह कथा तो मुझीपर लगती हैं, अच्छा इस बालककी माताका नाम तो पूछूं (सोचकर) अथवा परायी स्त्रीका वृत्तान्त पूछना अनरीति है ।

(तपस्विनी मिट्टीका मोर लिये हुए आयी)

प्र०तपस्वि०--हे सर्वदमन ! यह शकुन्तलावण्य देख ।

बालक--(बड़ी लालसासे देखकर) मेरी माता शकुन्तला कहां हैं ?

दोनों त०--यह माताका प्रिय नामकी समानतासे वंचित हो गया ।

दूसरी त०--वत्स ! मैंने तो यह कहा था कि इस मट्टीके मोरकी सुन्दरता देख ।

राजा--(आपही आप) क्या इसकी माता शकुन्तला है, अथवा एक नामकी अनेक होती हैं, अथवा मृगतृष्णाके समान मुझे दुःख देनेको वह नाम उच्चारण किया हो ?

बालक--(खिलौनेको लेकर)यह मोर मुझे बहुत अच्छा लगता है ।

प्र०तपस्वि०--(देखकर व्याकुलतासे) हाय ! हाय ! इस बालककी बांहसे रक्षाबंधन कहां गया ?

राजा--व्याकुल मत हो, जब यह सिंहके बचेसे खेल रहा था तब इसके हाथसे गंडा गिर गया सो यह पड़ा है (गंडा उठानेको हाथ बढ़ाया)

दोनों त०--हैं हैं इस गण्डेको छूना मत, अहो ! इसने तो उठा ही लिया ।

(दोनों अचंभेसे हृदयपर हाथ धर परस्पर देखती हैं)

राजा--तुमने मुझे इसके उठानेका निषेध क्यों किया ?

द्वि०तपस्वि०--सुनिये महाराज ! यह अपराजिता नाम महौषधि इस बालकके जातकर्मके समय महात्मा मरीचिके पुत्र कश्यपजीने दी थी, इसको यह बालक और इसके माता पिताको छोड़कर कोई नहीं उठा सकता ।

राजा–और जो कोई उठा ले ?

प्र० त०–तो यह सर्प बनकर उसे डसे।

राजा–कभी तुमने इसका प्रभाव देखा है ?

दोनों–अनेक वार।

राजा–(प्रसन्न होकर आपही आप) अब मनोरथ पूर्ण होनेसे मैं क्यों न आनन्द मनाऊं (बालकको आलिंगन करता है)

दूसरी त०–आओ सुव्रता ! यह सुखसमाचार शकुन्तलाको सुनावें, वह बहुत कालसे वियोगके कठिन नियम कर रही है।

(दोनों गयीं)

बालक–मुझे छोड़ो मैं अपनी माके पास जाऊँगा।

राजा–हे पुत्र ! तू मेरे संग चलकर अपनी माताको सुखी कर।

बालक–मेरे पिता तो दुष्यन्त हैं, तुम नहीं हो।

राजा- (मुसकाकर) यह विवाद भी मुझे विश्वास कराता है।

(एक वेणी धारण किये शकुन्तला आयी)

शकुन्तला–(आप ही आप) विकारके अवसरमें भी सर्वदमनके गंडेने रूप न पलटा यह सुनकर मुझे अपने भाग्यमें आशा नहीं है, अथवा यदि सानुमतीका कथन सत्य हो तो यह संभव है।

राजा–(शकुन्तलाको देखकर) अहा ! यही प्यारी भगवती शकुन्तला है।

(सोहिनी)

अहा ! यही मम प्राणपियारी।
नियम करत बीते बहुतै दिन,
दूबर अंग भई सुकुमारी।
मलिन वसन तनपर तिय पहरे,
शीश जटा इक बेनी धारी।
अपने शील स्वभाव सतीव्रत,
कर कर सहत विरहदुख भारी।
मुझ निर्दयी कठोर हिये हित,
रोगिन जोगिन बनी विचारी।

शकुन्तला–(पछतावेसे बिवर्णमुख राजाको देखकर) यह तो आर्यपुत्रसे नहीं हैं और नहीं तो कौन हैं, जिसने रक्षाबन्धन पहरे हुए मेरे बालकको अङ्ग लगाकर दूषित किया ?

बालक--(दौड़ता हुआ माताके समीप जाकर) मैया ! यह कौन पुरुष है. जो मुझे पुत्र कहकर गोदमें लेता है ?

राजा–प्यारी ! मैंने तुम्हारे सङ्ग निष्ठुरता तो की परन्तु इसका फल अच्छा हुआ जिससे मैं देखता हूँ कि तैंने मुझे पहचान लिया ।

शकुन्त०–(आपही आप) हे मन ! धीरज धर, धीरज धर, अब मुझे विश्वास हुआ कि दैवने ईर्षा त्यागकर मुझपै दया की, यह निश्चय मेरे ही स्वामी हैं ।

राजा–हे प्यारी !

(सोहनी)

सुधि आई मिट गयो सकल भ्रम मेरो भारी ।
सफल भये मम काज धन्य यह घड़ी पियारी ।
सन्मुख भेंटी आज प्रिया जीवनधन मेरी ।
ग्रहण होत जब दूर मिटत तेहि सकल अँधेरी ।
तबहिं चन्द्र ढिग आयके करत रोहिनी योग ।
तैसेहि पाई मैं प्रिया मिटे सकल दुखयोग ॥

(धन्य दिन आजको)

शकुन्तला--महाराजकी (इतना कहकर गद्गद्वाणी होती है, आंसू गिरते हैं)

राजा–प्यारी लीन्हों जान शब्द तुम जय उच्चारी ।
रुकी कण्ठमें आय प्रेमवश बैन तिहारी ।
पर अब शंका नाहिं सबहि बिधि मैं जय पाई ।
सुमुखि ! तुम्हारे दरश भयो अतिसरस सुहाई ।
अंगरागसे रहित यह अधर तिहारे लाल ।
दर्शन कर मनमें भयो मेरे मोद बिशाल ।

(धन्य दिन आजको)

बालक–हे माता ! यह कौन पुरुष है कहो विचारी।
शकुन्त०–बेटा अपने पूछ भाग्यसे कथा हमारी (आंसू भर लिये)
राजा–(शकुन्तलाके पैरोंमें गिरता है)

मनते प्यारी दूर करो अपमान हमारो।
वा छिन मेरे हिये रह्यो अज्ञान अपारो।
बहुतनकी यह होत गति तामसवश सुखवार।
फेंक देत अहिजान जिमि अन्धदिये गलहार।

(क्षमा कर दीजिये)

शकुन्त०–उठो प्राणपति! उठो न कुछ अपराध तिहारे।
पूर्वजन्मके पाप उये तिन दिनन हमारे।
शुभकर्मन फल भेंट तुम्हें निर्दयी बनायो।
तुम्हरे मनसे दया दूर कर अहित करायो।

(राजा उठता है)

मुझ दुखियाकी सुधि तुम्हें फिरि किमि भई नरेश।
कहो मुझे समझाय सब, मेटहु कठिन कलेश।

(न राखो गोयकर)

राजा–जब हियरेसे सकल विरहदुख जाय पराई।
तब सब कहिहौं प्रिया तोहि मैं कथा बुझाई।
तेरे अँसुअन बूंद परी जो अधरन आई।
लखि अनदेखी करी हिये अतिशय भ्रम पाई।
सो पछितायो आज मैं प्यारी लेहुँ मिटाय।
पोछूं इन अँसुआन जो रहे पलकलौं छाय।

(आंसू पोछता है, निकट मुख कीजिये)

शकुन्त०–(राजाकी अंगुलीमें मुँदरी देखकर)

क्या यह मुँदरी वही विपति जेहि मोहिं दिखाई॥

राजा–हां प्यारी यहि लखत मोहिं तेरी सुधि आई।

शकुन्त०--स्वामीको परतीत करन हित जब मन आनी।
तब यह दुर्लभ हुई करी अतिशय हित हानी।

राजा--हे प्यारी अब फिरि इसे करमें लीजे धार।
जैसे ऋतु आगमनमें लता फूल गुणवार।

(तुम्हैं लागत भली)

शकुन्तला–मुझे इसका विश्वास नहीं रहा, तुमहीं पहने रहो।

(मातलि आया)

मातलि--आज बड़े भाग्यका समय है, कि आपने अपनी धर्मपत्नीको पाया और पुत्रका मुख अवलोकन किया।

राजा–हां, आज मेरा अनिर्वचनीय मनोरथ सफल हुआ, हे मातलि! यह तो कहो कि यह वृत्तान्त इन्द्रको विदित था कि नहीं?

मातलि–(मुसकाकर) देवताओंसे क्या छिपा है? अब आप आइये, महानुभाव कश्यपजी आपको दर्शन देंगे।

राजा--प्यारी शकुन्तला पुत्रका हाथ पकड लो, तुमको आगे करके महर्षिके दर्शनकी इच्छा करता हूं।

शकुन्तला–महाराजके संग गुरुजनोंके समीप जाते मुझे लाज लगती है।

राजा–ऐसे शुभकालमें यह करना उचित ही है।

(संग चलते हैं)

(आसनपर बैठे कश्यप और अदिति दिखायी दिये)

कश्यप--(राजाको देखकर) हे दक्षसुता!

(चौपाई)

अग्रगामि तब सुवनसेनको, सुरगणके अवलम्ब देनको॥
भूपति नृप दुष्यन्त यही हैं, एहि धनुको परताप सही है॥
जाको प्रबल चाप शर पाई, नाममात्र हरि वज्र रहाई॥

अदिति०--इमि महिमा नृपके अनुरूपा,
कहत स्वामि जेहि सुरगण भूपा॥

मुद्री लखत चेत मन आयो ।
तव कुलको अपराध कियो मैं,
सो कैसे अब जात मिटायो ।

कश्यप–हे पुत्र ! तुम इसमें अपने अपराधी होनेकी शंका मत करो । तुममें स्वाभाविक मोह नहीं हुआ था, सुनो ।

राजा--मैं सावधान होकर सुनता हूँ ।

कश्यप--जब मेनकाने अप्सरातीर्थपर जाकर शकुन्तलाको बहुत व्याकुल देखा तो उसको लेकर अदितिके निकट आयी, उसी समय मैंने ध्यानसे जान लिया था कि, निःसन्देह दुर्वासाके शापके कारणसे ही राजाने अपनी तपस्विनी सहधर्मिणीको त्यागा है, और उस शापकी अवधि मुद्रीके देखने ही तक थी ।

राजा–(वेगसे) मैं धर्मपत्नीत्यागके अपवादसे छूट गया ।

शकुन्तला–(आपही आप) भाग्यकी बात है कि, पतिने मुझे जानबूझकर नहीं त्यागा.परन्तु मुझे यह सुधि नहीं कि, शाप कब हुआ ? अथवा विरहसे शून्यहृदय होनेके कारण वह शाप मैंने न जाना, इसीसे मेरी सखियोंने मुझे जता दिया था कि अपने स्वामीको अंगूठी दिखा देना ।

कश्यप--बेटी ! अब कृतार्थ हुई अपने स्वामीका अपराध न समझना ।

(राग कान्हडा)

तेरे पतिने होय शापवश तोहिं न जानकर त्यागी ।
सो सब मिटो महाभ्रम भामिनि अब तू भई सभागी ।
जिमि मलीन दर्पणके कारण परत न बिम्ब दिखाई ।
पुनि तेहि स्वच्छ किये सब दीखत तिमि तू भई सुहाई ।

राजा–जो आपने कहा सो सत्य है ।

कश्यप–बेटा ! जिसके हमने विधिपूर्वक जातकर्मादि संस्कार किये हैं उस शकुन्तलाके उदरसम्भूत इस अपने पुत्रका तुमने अभिनन्दन किया ।

राजा–भगवन् ! इससे तो मेरे वंशाकी प्रतिष्ठा है ।

कश्यप--तुम निश्चय जानो कि, यह बालक चक्रवर्ती होगा ।

कहूं सकै गति नहीं जासुकी चढ़ ऐसे रथमाहीं।
वीरपुत्र तव सात दीप जे सागर पार कहाहीं।
तिनको जीत प्रयास बिना ही अपने वश करि लावै।
सर्वदमन जिमि यहां दुष्टपशु दमनहेतु कल लावै।
तैसेहि प्रजा भरण पोषण कर भरत नाम यह पावै।
युग युग कीरति चलै पावनी आगमहू गुण गावै॥

राजा–जिसके आपने संस्कार किये हैं उससे सब प्रकारकी मुझे आशा है।

अदिति–हे भगवन्! आज इस बेटीके मनोरथ सिद्ध हुए, इससे इसके पिता कण्वको भी यह समाचार पहुँचाना उचित है और पुत्रीको प्यार करनेवाली इसकी मा मेनका तो मेरे ही निकट है वह सब जानती भी है।

शकुन्तला–(आपही आप) भगवतीने तो मेरे मनबीती बात कही।

कश्यप–तपके बलसे महर्षि कण्व सब वृत्तान्त जानते हैं।

राजा–इसीसे मुनिने मुझपर क्रोध न किया।

कश्यप–तथापि हमें यह प्रिय समाचार उनके निकट भेजना चाहिये, कोई यहां है?

(एक चेला आया)

शिष्य–भगवन्! क्या आज्ञा है?

कश्यप–गालव! अभी तुम आकाशमार्गसे जाकर मेरी ओरसे महर्षि कण्वसे यह प्रियसंवाद कहना कि, शाप निवृत्त होनेसे दुष्यन्तने पुत्रवती शकुन्तलाको पहँचानकर अंगीकार कर लिया।

शिष्य–जो आज्ञा (गया)

कश्यप–हे पुत्र! तुम भी अब अपनी स्त्री और पुत्रके सहित अपने मित्र इन्द्रके रथपर बैठकर अपनी राजधानीको पधारो।

राजा–जो आज्ञा।

कश्यप–और हम तुम्हारा क्या प्रिय करै?

"तुम्हरे सब राज्य माहिं, प्रजा सुख पावैं॥
बरसे नित इन्द्र मेह, ठानै मख विप्र नेह।

मंगल सब गेह गेह, सुर मुनि मनभावैं ॥
साधै इहि विधि सुकाज, सुरनर मिल तव सुराज।
सो जुग तुहि महाराज, पद लखि गुण गावैं ॥
राजा-अपनी सामर्थ पाय, करिहौं सब हेतु पाय ।
हमपर नित प्रेम भाय, राखो शिर नावैं ॥
मनकी अभिलाष पूरि, पाई तव कृपा भूरि ।
होगये दुखद्वन्द्व दूरि, नित तव पद ध्यावैं ॥
कश्यप-अब और क्या आशीर्वाद दें"

दुष्यन्त--इससे अधिक और क्या प्रिय होगा ? और जो आप पूछते ही हैं तो भरतका यह वाक्य पूरा हो ।

(छप्पै)

राजा अपनी प्रजाहित नित करहिं सुकाजै ।
वेदनिरत द्विज नित्त सरस्वती पूजन साजै ॥
पार्वतीपति शंभु नीललोहित सुखदाई ।
जन्म मरणसे मोहिं छुटावैं करैं सहाई ॥
धर्म प्रेममय वरध्वजा भारतमें फहरत रहै।
ज्वालाप्रसादकी कृती यह सज्जन जिय आदर लहै ॥

कश्यप-तथास्तु ।

(सब बाहर जाते हैं)

इति सप्तमाङ्क समाप्त हुआ ।

पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत अभिज्ञानशाकुन्तलनाम नाटकका गद्यपद्यात्मक अनुवाद पूर्ण हुआ ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' प्रेस,
कल्याण-बम्बई